धन्यवाद ।



"श्रावक प्रतिक्रमण" गृहस्थोंके लिये अत्यन्त उपयोगी और संग्रहणीय ग्रथ है । इसका प्रकाशन श्रीमती ब्रह्मचारिणी गुलाबबाईजी तथा उनके भाई धर्मपरायण सेठ मोतीलालजी केसरीमलजी छावड़ा निवाई (जयपुर) वालोंने ज्ञानावरणीय कर्मक्षयार्थ स्वकीय द्रव्यसे किया है इसके लिये हम ब्रह्मचारिणी श्री गुलाबबाईजी तथा उनके भाई सेठ मोतीलालजी केसरीमलजी छावडा सा० को भूरि भूरि धन्यवाद देते हैं ।

मन्त्री, श्री आचार्य शांतिसागर छाणी
ग्रंथमाला सागवाड़ा (डूंगरपुर)

श्री १०८ श्री आचार्य शान्तिसागर

जैन ग्रन्थमाला स्वामी महाराज छाणी दिगम्बर

[डूंगरपुर] के

नियम व उद्देश

१-इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य प्राचीन संस्कृत प्राकृत साहित्यका उद्धार करना है।

२-प्राचीन आर्ष-ग्रन्थोंका सर्वत्र सुलभतासे प्रचार हो एतदर्थ ग्रन्थमाला समस्त ग्रन्थ लागत मूल्य पर दिये जायंगे, त्यागी, व्रती और संयमीको विना मूल्य दिये जायंगे।

३-इस ग्रन्थमालामें मूल ग्रन्थके साथही भाषा ग्रन्थ छप सकेंगे। केवल भाषाके ग्रन्थ नहीं छपेंगे।

४-प्रत्येक वर्षमें एक ग्रन्थ प्रकाशित किया जायगा। यदि ग्रन्थ बड़ा हुआ तो दो तीन वर्षमें पूरा होगा, एक ग्रन्थ पूर्ण हुये विना दूसरा नहीं छपेगा।

५-इस ग्रन्थमालामें दिगम्बर जैन सनातन वीसपन्थी आम्नायके ही आर्षग्रन्थ प्रकाशित होंगे।

६-इस ग्रन्थमालाकी रजिस्टरी हो गई है। इसलिये इसका कार्य नियमित सुचारु रूपसे होता है।

७- २५) रु० प्रदान करनेवाला स्थायी ग्राहक होता है।

८- १०१) रु० प्रदान करनेवाला सहायक समझा जाता है।

९-एक हजार रुपया प्रदान करनेवाला संरक्षक समझा जाता है।

१०-इन सबको ग्रन्थमालाके समस्त ग्रन्थ भेट रूप दिये जाते हैं।

इस ग्रन्थमालाकी सहायता करना प्रत्येक साधर्मी भाईका आद्य कर्त्तव्य है।

पता—मन्त्री हीरालालजी मुनीम
श्री आचार्य शांतिसागर छाणी ग्रन्थमाला
सागवाडा [डूंगरपुर]

ग्रन्थमालामें प्रकाशित ग्रन्थ।

१ करुणामृतपुराण	२)
२ रयणसार सार्थ	।=)
३ भक्तामर शतद्वयी	।।)
४ श्रावक प्रतिक्रमण	।=)

भविष्यमें प्रकाशित होनेवाले ग्रंथ।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार पं० चम्पालाल कृत भाषानुवाद

वसुनन्दी श्रावकाचार पं० चम्पालाल कृत

उमास्वामी श्रावकाचार

षट्कर्मोपदेश रत्नमाला

पता—मन्त्री हीरालाल मुनीम
श्री आचार्य शान्तिसागर छाणी ग्रन्थमाला
सागवाडा [डूंगरपुर]



श्री १०८ आचाय श्रीशान्ति सागर जी छानी वाले।

भूमिका

प्रतिक्रमण पाठके रचयिता कौनसे महानुभाव हैं ? इसके निश्चयका हमारे पास कुछ साधन नहीं है, तो भी श्रुतसागराचार्योंने कई जगह गौतम महर्षिका उल्लेख किया है। सहस्रनामकी टीकामें प्रतिक्रमणके पाठका विवरण 'उक्तं च महर्षि गौतमस्वामिना' इत्यादि प्रकारसे स्पष्ट किया है। ये गौतम महर्षि कौन थे ? और इस वसुंधराको किस समय पवित्र किया इस विषयका प्रकाश इतिहासज्ञ करेंगे।

प्रतिक्रमणकी एक्त्र लिखित (संवत् १६०५ की लिखी) प्रति ईडरके प्रसिद्ध भंडारमें है और भी ईडरके भंडारमें अनेक प्रतिक्रमणकी प्रति मिलती हैं। मुनियोंके प्रतिक्रमण पाठकी भिन्न २ प्रति हैं परन्तु उन सब प्रतियोंमें कर्ताका नाम देखनेमें नहीं आया। अतएव इस प्रतिक्रमण पाठके कर्त्ताका निश्चय विचाराधीन है।

प्रतिक्रमण पाठसे यह प्रतीत होता है कि यह संग्रह किया है, क्योंकि इसमें भगवान वसुनंदी सिद्धान्तचक्रवर्तीके रचित श्रावकाचारकी गाथा मिलती है, परन्तु यह बात नहीं है क्योंकि प्राचीन प्रतियोंमें यह पाठ नही है। संभव है किसी विद्वान्ने व्रत और प्रतिमाओंका स्वरूप समझानेके लिये यह पाठ निवेशित किया

हो। अस्तु, जो कुछ हो। प्राचीन प्रतियोंसे यह किसी खास महर्षि· का बनाया हुआ प्रतीत होता है। संभव है कि गौतम महर्षिका ही बनाया हो।

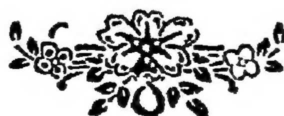
प्रतिक्रमण पाठ प्रथम भावनगरसे प्रसिद्ध हुआ, फिर सेठ हीराचंद नेमचंद शोलापुरवालोंने मराठीमें प्रसिद्ध किया व गुर्जर भाषामें प्रसिद्ध हो चुका है। इस प्रकार इसका प्रचार सर्वत्र देखनेमें आता है परन्तु संयुक्त प्रांत और मध्य प्रांतमें इसका प्रचार नहीं है इसलिये हिन्दी भाषामें प्रसिद्ध किया जाता है। आशा है समस्त बन्धुगण इससे लाभ लेंगे। यदि इससे कुछ लाभ हुआ तो सामायिक पाठ भी जो गौतम महर्षिकृत संग्रहीत है प्रकाशित किया जायगा।

इसमें मेरी अज्ञतासे जो कुछ आगमविरुद्धता हुई हो विद्वज्जन क्षमाकर एक पत्रसे सूचित करेंगे जो आगामी संस्करणमें सुधार दी जाय।

भवदीय—

नन्दनलाल जैन वैद्य, ईडर

(वर्तमान—मुनि श्रीसुधर्मसागर)



प्रस्तावना

पाठकगण ! यह प्रतिक्रमण आपके करमलोंमे उपस्थित है। प्रतिक्रमण किसको कहते है ? और वह क्यों करना चाहिये यह वतला देनेसे इस पुस्तककी उपयोगता अधिक वढ जायगी।

प्रतिक्रमणका "अपने भले वुरे किये हुए (कृतकर्म) कर्मोंका आत्मनिंदा पूर्वक त्याग करनेका भाव-आत्माका ऐसा विशुद्ध परिणाम कि जिसमें अशुभ क्रियाओंकी निवृत्ति हो" यह वाच्यार्थ है। इस प्रकारके भाव भेद विज्ञानको उत्पन्न करते हैं।

प्रतिक्रमण पट् आवश्यकोंके अंतर्गत एक भेद है। पट् आवश्यकोंका पालन करना गृहस्थ और मुनियोंके लिये नितान्त आवश्यक है। इतना ही नही, किन्तु प्रतिक्रमण करनेसे आत्मोन्नतिके साथ साथ भावोंकी विशुद्धि और कर्मोंकी निजरा सातिशय होती है।

जीवमात्र सुख और शांतिका मार्ग अन्वेपण करते हैं। सुख और शांतिका प्रधान मार्ग वीतरागता-कपायोंकी निवृत्ति है। कपायोंकी विजय पापाचरणोंसे भय, विपयोंसे निवृत्ति, ममत्वत्याग, स्वात्मवोध और स्वात्मगुण चिन्तवन करनेसे होती है। प्रतिक्रमण करनेसे उक्त पांचों कार्य स्वयमेव सिद्ध होते हैं। प्रतिक्र-

मण आत्मसाधनका और निर्वाणपदका मुख्य अंग माना गया है।

अनादिकालसे यह जीव हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह इन पंच पापोंमें निमग्न हो रहा है। और इनसे ही जन्म मरणके भयंकर दारुण दुःखोंको उठा रहा है। प्रतिक्रमण करनेसे हिंसादि व्यापारोंसे ग्लानि, पापकर्मोंसे भय और अशुभ क्रियाओंसे विरक्त बुद्धि उत्पन्न होती है। प्रतिक्रमण करनेवाला भव्य-जीव अपने प्रत्येक कार्यको विचारता है कि यह कार्य करनेसे मेरे पापाचरणोंकी वृद्धि होगी इसलिये मैं इसका त्याग करूं। मानसिक व्यापार व संकल्प विकल्पोंसे भी वह भयभीत होता है। प्रतिक्रमण करनेवाला जीव पंचेन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होता है और ऐसे कारणकलापोंका परित्याग करता है जो विषयोंके बढ़ानेवाले हैं। पापाचरण और विषयोंके सेवन करनेसे व्यामोह बढता है इसलिये आत्मबोध जागृत नहीं होता है। प्रतिक्रमण करनेसे पर-पदार्थोंसे मोहका नाश होता है, इसलिये स्वात्मबोधकी प्राप्ति होती है जिससे श्री अरहंत परमात्माकी भक्ति, रत्नत्रयकी पवित्र भावना और स्वात्म-धर्ममें दृढता प्राप्त होती है। देह भोगादिकोंसे विरक्तता, कषायोंकी विजय, सुख और शांतिका मार्ग विकाश होता है।

मन वचन और शरीरके व्यापारोंका पुद्गल परमाणुओं पर गहरा असर पडता है। आत्मामें कषायोंकी सचिक्कणता होनेसे उन पुद्गल परमाणुओंका आत्माके साथ घनिष्ठ संबन्ध हो जाता

है और वही संवन्ध आत्मगुणोंका-सुख और शांतिको घात करता है। इसलिये कषायोंको विजय करना और मन वचन कायके व्यापारोंको रोकना ही यथार्थ सुख और शांतिका मार्ग है। प्रतिक्रमण करनेसे कषायोंकी विजय होती है, सुख और शान्तिका मार्ग विकाशको प्राप्त होता है इसलिये प्रतिक्रमण करना परमावश्यक कार्य्य है।

प्रतिक्रमण—स्वात्मशिक्षक है। इससे अपने आप अपने दुष्कृत्योंको शिक्षा ली जासक्ती है। स्वात्म गुणोंके विकाश-की शिक्षा भी मिलती है।

प्रतिक्रमण करनेके लिये सवसे प्रथम वाह्यशुद्धिपर पूर्ण ध्यान देना चाहिये। क्योंकि शुभाशुभ निमित्त ही आत्माको भले बुरे मार्गमें ले जानेवाले होते हैं।

वाह्यशुद्धि-आत्मभावोंको विशुद्ध रखती है। इसलिये शरीर शुद्धि वचन शुद्धि और मन शुद्धि जिस प्रकार सर्वोत्तम रहे उस प्रकार वाह्यशुद्धिको करना चाहिये।

भोजन शुद्धि-मनशुद्धिका कारण है इसलिये आहार पान शुद्धि, स्नान शुद्धि, वस्त्रशुद्धि, स्थानशुद्धि, जिनागमकी आज्ञानुसार विचार शुद्धि और वचन शुद्धि रखनी चाहिये। अपने भावोंको विशुद्ध करनेके लिये जो कुछ भले बुरे काम किये हों उनका विचार (स्मरण) करना चाहिये। भविष्यमें ऐसे बुरे कार्य्य न हों ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करनी चाहिये। इस प्रतिज्ञाको दृढ़तर वनानेके लिये स्वात्मविश्वास-पूर्वक वीतराग

प्रभुके गुणोंकी भावना निरंतर करना चाहिये। अपने दुष्कृत्यों-को निवेदन करना चाहिये, मनन करना चाहिये और परित्यागके लिये तत्पर रहना चाहिये।

प्रतिक्रमण करनेके प्रथम लघु सामायिक पाठ अवश्य करना चाहिये। नैष्ठिक श्रावक और मुनियोंके व्रत नियममें होते हैं। उनके व्रतोंमें अतीचारादि दोषोंका उद्भावन होना संभव है इसलिये उनको अपने व्रतोंकी विशुद्धिके लिये प्रतिक्रमण करना चाहिये। परन्तु पाक्षिक श्रावकोंके व्रतमें अभ्यास मात्र ही होता है अतएव व्रतोंको दृढ बनानेके लिये तथा दोषोंके विचारके लिये प्रतिक्रमण करना नितान्त आवश्यक है एवं व्रतोंको भावना भी व्रतका एक-देश पालन करना है। प्रतिक्रमण करनेसे व्रतोंको (अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रहत्याग) भावना पुष्ट होती है।

प्रतिक्रमण दैनिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक भेदोंसे अनेक प्रकार है। चातुर्मासिक और सांवत्सरिक परिक्रमणमें पूरो जाप्य १०८ देना चाहिये, अवशेषमें १८-२७-३६ भो देते हैं।

प्रतिक्रमण करनेमें "णमोकार मन्त्र" को स्पष्ट बोलना चाहिये और जहांतक हो पंच परमेष्ठीके गुणोंका चिंतवन विशेष ध्यान-पूर्वक करना चाहिये।

कितने ही स्थलों पर 'णमो अरहंताणं' से प्रारंभकर "यावंति जिनचैत्यानि विद्यन्ते भुवनत्रये। तावंति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नमाम्यहं" यहां पर्यन्त पाठको पढ़ना चाहिये।

प्रतिक्रमणका समय कमसे कम दो घड़ी है। इससे कम समयमें प्रतिक्रमण नहीं होता है। ये दो घडी प्रातःकाल मध्याह्न काल और सायंकालके समयकी लेना चाहिये।

प्रतिक्रमण करते समय इन बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये-

(१) व्यापार, गृह और इष्ट-वियोग-अनिष्ट, संयोग सम्बन्धी आकुलताको छोड देनी चाहिये।

(२) पुत्र, मित्र, भाई, बन्धु, और कुटुम्ब परिवारोंको चिन्ता छोडकर प्रतिक्रमण करना चाहिये।

(३) मनको वशकर सावधानीसे प्रतिक्रमण करना चाहिये।

(४) उत्साह और प्रेमसे प्रतिक्रमण करना चाहिये। आलस्य और अनादर प्रतिक्रमणके घातक हैं।

(४) आसन ठीक रखना चाहिये। परिग्रहका परिमाण करना चाहिये।

(५) कायोत्सर्ग—शरीरसे ममत्व त्याग करनेके लिये उपसर्गोंको जीतनेका प्रयत्न और अभ्यास डालना चाहिये।

(६) णमोकारमंत्र, २७ श्वासोच्छ्वासमे जपना चाहिये। शीघ्रता,अस्थिरता और कायरताको दूरकर प्रतिक्रमण करना चाहिये

(७) प्रतिक्रमणके लिये जिनमुद्रा (नासिकाग्रदृष्टि) का धारण करना और शांतिसे विषयकषायोंको जीतनेका विशेष उद्योग करते रहना चाहिये।

(८) प्रतिक्रमण पाठको और उसके अर्थोको मनन करते हुए प्रतिक्रमण करना चाहिये

(६) समस्त जीवोंमें प्रेमभावना, गुणीजनोंमें भक्ति भावना, दुःखी (अज्ञान और कुचारित्रसे दुःखी) जीवोंमें करुणा भावना और मात्सर्य जीवोंसे साम्य भावना रखकर प्रतिक्रमण करना चाहिये।

(११) जहांपर कायोत्सर्ग आवे वहांपर णमोकार मंत्रको जाप्य ६ वार देना चाहिये परन्तु वीरभक्तिमें १८-२७-३६-१०८ आदिका क्रम जैसा प्रतिक्रमण करना हो देना चाहिये।

भवदीय-मुमुक्षु जनोंका दास-
नन्दनलाल जैन वैद्य। ईडर





श्रीजिनाय नमः

श्रावकप्रतिक्रमण



ईर्यापथ ।

निःसंगोहं जिनानां मदनमनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या,
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम् ॥
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवन्द्यं,
निन्दादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम् ॥१॥

भावार्थ—मन वचन कायसे शुद्ध होकर, अनुपम श्री-जिनालयमें जाकर भक्ति-पूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर फिर कुछ समय पर्यन्त थोडा स्थित होकर पुनः धीरे धीरे श्रीजिनेन्द्र भग-वानके दक्षिणाभिमुख बैठकर भाव भक्ति पूर्वक स्तोत्र पढ़े। अपने दोनों हाथोंको कमलाकार बनाकर और अपने मस्तकपर स्थापनकर समस्त पापोंको दूर करनेवाले इन्द्रादिक देवोंसे

पजित समस्त दोषोंसे रहित अविनश्वर तथा ज्ञानरूपी सूर्य ऐसे श्री अरहंत भगवान श्रीजिनेन्द्रदेवको मैं अपनी बुद्धिकी शुद्धतासे स्तुति करता हूं ॥ १ ॥

श्रीमत्पवित्रमकलंकमनन्तकल्पं,
स्वायंभुवं सकलमंगलमादितीर्थम् ॥
नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानां,
त्रैलोक्यभूषणमहं शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥

भावार्थ—जो जिनालय परम ऐश्वर्य सहित है, परम पवित्र है, कलंक रहित है, अनंत कालसे जिसकी रचना स्वयंसिद्ध है और जो श्री जिनेन्द्र भगवानके विराजमान होनेकी भूमि होनेसे श्रीजिनेन्द्रदेवके समान ही परमपूज्य है। श्रीजिनेन्द्रदेवके समान ही परम पवित्र है, मंगलमय है। अतएव यह जिनालय संसार समुद्रसे पार करनेके लिये सबसे

१—जल मृत्तिका आदि वस्तुओंसे शरीर शुद्ध होता है। मंत्रोंके प्रभावसे मनकी शुद्धि होती है। श्रद्धा और भक्तिके अनुरागसे वचनकी शुद्धि होती है। वस्त्र भूमि द्रव्य आदि पदार्थ भी जल गोमय और कुशासे शुद्ध होते हैं और मंत्रोंसे भी शुद्ध किये जाते हैं।

२—श्रीजिनेन्द्र भगवानके उत्तर या पूर्व मुख हो पूजन व दर्शन करनेकी जिनागममें आज्ञा है।

३—जिन-मंदिर भी अरहंतके चैत्यके समान पूज्य है, नव देवोंमेंसे एक देव है।

मुख्य तीर्थ है। जो सदाकालीन उत्सवोंसे जगतको आनंद करने वाला है, रत्नोंसे जिसकी रचना हुई है इसलिये वह तीनों लोकोंको सुशोभित करनेवाला है। ऐसे श्रीजिनालयकी मैं शरण होता हूं॥ २॥

श्रीमत्परमगंभीरस्याद्वादामोघलांछनम्॥

जीयात् त्रैलोक्यनाथस्य शासनं जिनशासनम्॥ ३॥

भावार्थ—जो अन्तरंग अनंतकेवलज्ञानरूपी लक्ष्मीसे सुशोभित है और बाह्य प्रत्यक्ष परोक्ष बाधारहित अजेय सत्य लक्ष्मीसे भूषित है, जो परम गंभीर है, स्याद्वादकी अमोघ मुद्रासे अलंकृत है ऐसा त्रैलोक्य प्रभु श्रीजिनेन्द्रदेवका यह शासन चिरकाल जगतके जीवोंका मंगल करो॥ ३॥

श्रीमुखालोकनादेव श्रीमुखालोकनं भवेत्।

आलोकनविहीनस्य तत्सुखावाप्तयः कुतः॥४॥

भावार्थ—श्रीजिनेन्द्रदेवके मुखके दर्शन करने मात्रसे ही मुक्तिरूपी लक्ष्मीका अपरम्पार सुख दीखने लगता है। भला जो श्रीजिनेन्द्र देवके दर्शन नहीं करते हैं उनको सुख किस प्रकार प्राप्त हो सकेगा?

अद्याभवत्सफलता नयनद्वयस्य,
देव त्वदीय चरणाम्बुजवीक्षणेन॥
अद्य त्रिलोकतिलक प्रतिभासते मे,
संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम्॥ ५॥

भावार्थ—हे देव ! आज आपके चरण-कमल देखनेसे मेरे दोनों ही नेत्र सफल हुये हैं। हे तीन लोकके तिलक ! आज आपके दर्शन मात्रसे संसाररूपी समुद्र मुझे चुल्लूभर पानीके समान जान पडता है ॥ ५ ॥

अद्य मे क्षालितं गात्रं नेत्रे च विमलीकृते ।
स्नातोऽहं धर्मतीर्थेषु जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥६॥

भावार्थ—हे जिनेन्द्र देव ! आज आपके दर्शन करनेसे मेरा शरीर पवित्र हो गया है। मेरे दोनों नेत्र निर्मल हो गये हैं और आज मैंने धर्मरूपी तीर्थमे स्नान कर डाला है ॥ ६ ॥

नमो नमः सत्त्वहितंकराय वीराय भव्यांबुजभास्कराय ।
अनंतलोकाय सुरार्चिताय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥७॥

भावार्थ—जो भगवान श्रीवर्द्धमान स्वामी समस्त जीवोंका भला करनेवाले हैं भव्यरूपी कमलोंको सूर्यके समान प्रफुल्लित करनेवाले हैं। अनंतलोकको देखनेवाले हैं। देवोंके द्वारा पूज्य हैं और देवोंके भी परमदेव हैं ऐसे श्री अरहंतदेव भगवान श्रीमहावीर स्वामीके लिये मैं वार वार नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय विनष्टदोषाय गुणार्णवाय ।
विमुक्तिमार्गप्रतिबोधनाय देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥८॥

भावार्थ—जो अरहंतदेव इन्द्रोंके द्वारा पूज्य हैं। क्षुधा तृषा आदि अठारह दोषोंसे रहित हैं। अनंत गुणोंके समुद्र हैं, मोक्षमार्गके उपदेश देनेवाले हैं और देवोंके भी अधिपति-देवाधिदेव श्री

अरहंत भगवान देव हैं ऐसे श्रीअरहंतदेवके लिये वार वार नमस्कार है ॥ ८ ॥

देवाधिदेव परमेश्वरवीतराग !
सर्वज्ञ तीर्थंकर सिद्ध महानुभाव ॥
त्रैलोक्यनाथ जिनपुंगव वर्द्धमान !
स्वामिन् गतोऽस्मि शरणं चरणद्वयं ते ॥९॥

भावार्थ--हे देवाधिदेव ! हे परमेश्वर ! हे वीतराग ! हे सर्वज्ञ ! हे तीर्थंकर ! हे सिद्ध ! हे महानुभाव ! हे त्रैलोक्यनाथ ! हे जिनपुंगव ! हे वर्द्धमान ! हे स्वामिन् ! मैं आपके पवित्र चरणकमलोंकी शरण लेता हूं ॥ ९ ॥

जितमदहर्षद्वेषा जितमोहपरीषहा जितकषायाः ।
जितजन्ममरणरोगा जितमात्सर्या जयंतु जिनाः ॥१०॥

भावार्थ--हे जिनेन्द्रदेव ! आप ही हर्ष और द्वेषको जीतनेवाले हो, मोह और परीषहोंको जीतनेवाले हो, कषायों (क्रोध-मान माया लोभ) को जीतनेवाले हो, जन्म-मरण और रोगको जीतनेवाले हो, मत्सरताको जीतनेवाले हो और समस्त दोषोंको जीतनेवाले हो अतएव आप जिनेन्द्र हो। हे भगवन् ! आप सदैव जयवंत रहो ॥ १० ॥

जयतु जिनवर्द्धमानस्त्रिभुवनहितधर्मचक्रनीरजबंधुः ।
त्रिदशपतिमुकुटभासुरचूडामणिरश्मिरंजितारुणचरणः ॥११॥

भावार्थ—जो तीनोंलोकोंके समस्त जीवोंका सदोदित

हित करनेवाले ऐसे पवित्र धर्मचक्ररूपो कमलके लिये सूर्यके समान हैं, जिनके चरणकमलोंको लालिमा इन्द्रोंके मुकुटके चूडामणि रत्नकी शोभाको अद्वितीय प्रकाश कर रही है। ऐसे श्रीभगवान् वर्द्धमान स्वामी सदा जयवंत हों ॥ ११ ॥

जय जय जय त्रैलोक्यकाण्डशोभि शिखामणे !
नुद नुद नुद स्वांतध्वांतं जगत्कमलार्क नः ॥
नय नय नय स्वामिन शांतिं नितांतमनन्तिमां,
न हि न हि न हि त्राता लोकैकमित्र भवत्परः ॥१२॥

भावार्थ—हे भगवन् ! आप तीनलोकमें अद्वितीय शोभाको धारण करने वाले चूडामणि रत्नके समान हैं इसलिये आपको जय हो जय हो पुनः पुनः जय हो। हे प्रभो ! आप ही जगतरूप कमलको प्रकाश करनेके लिये सूर्यके समान हैं इसलिये मेरे मोहांधकारको दूर कीजिये, दूर कीजिये, दूर कीजिये। हे स्वामिन् ! अविनश्वर शांतिको मुझे प्रदान कीजिये, प्रदान कीजिये, प्रदान कीजिये। हे भव्यजीवोंके अद्वितीय मित्र ! आपके सिवाय मेरी रक्षा करने वाला, संसारके दारुण दुःखोंसे बचाने वाला अन्य कोई नही है, अन्य कोई नहीं है, अन्य कोई नहीं है ॥ १२ ॥

चित्ते मुखे शिरसि पाणिपयोजयुग्मे,
भक्तिं स्तुतिं विनतिमंजुलिमञ्जसैव ॥
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति,
यश्चर्करीति तव देव स एव धन्यः ॥१३॥

भावार्थ— हे देव ! हे अर्हन् ! हे मंगललोकोत्तम शरणभूत!

जो पुरुष अपने मनमें आपकी भक्ति करता है। मुखसे आपकी स्तुति करता है। मस्तकसे विनय पूर्वक नमस्कार करता है। और अपने दोनों हाथरूपी कमलोंसे आपके लिये अंजुलि करता है। हे भगवन्! वह पुरुष इस संसारमे अत्यन्त धन्य है, पुरुषोत्तम है, भव्य है और संसार समुद्रसे शीघ्रही पार होने वाला है॥ १३॥

जन्मोन्माज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यं,
तच्चेत्स्वैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः॥
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेत्सुधास्ते,
क्षुद्व्यावृत्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः॥१४॥

भावार्थ—हे भगवन्! हे अर्हन् प्रभो! पुरुषको जन्म मरण दूर करनेवाले आपके पवित्र चरणकमलका सेवन करना चाहिये यदि उनकी प्राप्ति न हो सके तो अपनी प्रवृत्ति इच्छानुसार करे परन्तु उसे मिथ्या देवताओंका सेवन नहीं करना चाहिये। जैसे कि- इस संसारमें जिसको अमृत मिलना कठिन है वह सुगम रीतिसे प्राप्त होनेवाले अन्नका भक्षण करता है परंतु भूखको मिटानेके लिये विषका भक्षण नहीं करता॥ १४॥

रूपं ते निरुपाधिसुंदरमिदं पश्यन्सहस्रेक्षणः,
प्रेक्षाकौतुककारि कोऽत्र भगवन्नोपेत्यवस्थांतरम्॥
वाणीं गद्गदयन् वपुः पुलकयन् नेत्रद्वय स्रावयन्,
मूर्द्धानं नमयन् करौ मुकलयन चेतोपि निर्वापयन्॥१५॥

भावार्थ—हे भगवन्! यह आपका रूप वस्त्र अलंकार आदि उपाधियोंको धारण किये विना ही अत्यन्त सुन्दर है। तथा देखनेवालोंको अत्यन्त कौतुक उत्पन्न करनेवाला है। हे प्रभो! इस संसारमें कौन पुरुष है जो आपके ऐसे सुन्दर रूपको देखकर अपनी अवस्थाको न बदले। (आपके सुन्दर रूपको देखने मात्रसे ही जीव अपनी अवस्थाको बदलकर स्वाभाविक तत्त्व अवस्थाको प्राप्त हो जाते हैं) हजार नेत्रोंको धारण करने वाला इन्द्र भी आपके उस सुंदर रूपको देखकर अपनी वाणीको गद्‌गद बना लेता है। अपने शरीरको प्रफुल्लित कर लेता है। उसके दोनों नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगती है। वह इन्द्र अपने मस्तकको नमा लेता है। दोनों हाथोंको जोड़ लेता है और अपने हृदयमें अत्यन्त संतुष्ट हो जाता है ॥ १५ ॥

त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदिति त्राता त्रिलोक्या इति,
श्रेयः सूतिरिति श्रियां निधिरिति श्रेष्ठः सुराणामिति।
प्राप्तोहं शरणं शरण्यमगतिस्त्वां तत्त्यजोपेक्षणं,
रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन किं विज्ञापितैर्गोपितैः ॥१६॥

भावार्थ—हे भगवन्! आप समस्त कर्मरूपी शत्रुओंका नाश करने वाले हैं। समस्त पदार्थोंकी त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायोंको एक साथ सतत जानने वाले हैं। अनेक प्रकारकी कल्याण परंपराको उत्पन्न करने वाले हैं। अनंत चतुष्टयके निधि हैं और देवोंमें भी आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। इसके सिवाय आप ही समस्त जीवोंको वास्तविक शरण देने वाले हैं और अत्यन्त

कल्याणमय पदको प्राप्त हुए हैं। हे प्रभो! मैं यह सब कुछ समझ कर और मुझे अपनी कोई दूसरी गति (मार्ग) दिखाई नहीं देनेके कारण ही आपके शरणमे आया हूं। इसलिये हे नाथ! आप प्रसन्न हूजिये। अपनी उपेक्षाका परित्याग कीजिये और मेरी रक्षा कीजिये। अब मेरा आपके सिवाय कोई भी शरण नहीं है। इसलिये मेरी उस प्रार्थनाको गुप्त रखनेमें क्या लाभ होगा? ॥ १६ ॥

त्रिलोकराजेन्द्रकिरीटकोटिप्रभाभिरालीढपदारविन्दम्।
निर्मूलमुन्मूलितकर्मवृक्षं जिनेन्द्रचंद्रं प्रणमामि भक्त्या ॥

भावार्थ—तीन लोकमें उत्पन्न होनेवाले राजा महाराजा और इन्द्रोंके करोड़ों मुकुटकी प्रभासे जिनके चरण-कमल सुशोभित हो रहे हैं और जिन्होंने कर्मरूपी वृक्षको समूल जड़से नष्ट कर डाला है। ऐसे श्रीजिनेन्द्र भगवान श्रीचन्द्रप्रभुको मैं बड़ी भक्ति और विशुद्ध भावनासे नमस्कार करता हूं॥ १७॥

करचरणतनुविघातादटतो निहतः प्रमादतः प्राणी।
ईर्यापथमिति भीत्या मुंचे तद्दोषहान्यर्थं ॥ १८॥

भावार्थ—मार्गमें चलते हुए मेरे हाथ पैर और शरीरके हलन चलनसे जिन प्राणियोंका विघात हुआ हो। प्रमादसे जो घात हुआ हो उस दोषको दूर करनेके लिये ईर्यापथ-गमनका परित्याग करता हूं। गमनागमन क्रियाओंको रोक आत्मविशुद्धिकी भावनको धारण करता हूं॥ १८॥

ईर्यापथे प्रचलताद्य मया प्रमादा-
देकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा ॥
निर्वर्तिता यदि भवेद्युगान्तरेक्षा,
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥ १९ ॥

भावार्थ—हे भगवन्! ईर्यापथपूर्वक शुद्धिसे चलते हुए भी मुझसे प्रमाद वश यदि ऐकेन्द्रिय आदि जीवोंकी विराधना हुई हो तो वे मेरे सब दोष गुरु-भक्तिके प्रसादसे मिथ्या हों ॥१६॥

प्राग्दिग्विदिगंतरकेवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः ।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगिगणास्तानहं वंदे ॥ १ ॥

इस श्लोकको पढ़कर पूर्व दिशामे तीन आवर्त और नति करनी चाहिये ॥ १ ॥

दक्षिणदिग्विदिगंतरकेवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः ।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगिगणास्तानहं वंदे ॥ २ ॥

इस श्लोकको पढकर दक्षिण दिशामे तीन आवत और नति करनी चाहिये ॥ २ ॥

पश्चिमदिग्विदिगंतरकेवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः ।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगिगणास्तानहं वंदे ॥ ३ ॥

इस श्लोकको पढकर पश्चिम दिशामे तीन आवर्त और नति करनी चाहिये ॥ ३ ॥

उत्तरदिग्विदिगंतरकेवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः ।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगिगणास्तानहं वंदे ॥ ४ ॥

इस श्लोकको पढ़कर उत्तर दिशामें तीन आवर्त और नति करनी चाहिये ॥ ४ ॥

सामयिक।

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥ १ ॥

भावार्थ—जिनका अनन्तज्ञान अलोक सहित तीनों लोकोंको स्पष्ट जानता है और जिनने अपनी आत्मासे समस्त दोष नष्ट कर दिये हैं ऐसे सर्वज्ञ वीतराग श्रीवीर भगवानके लिये नमस्कार है ॥ १ ॥

प्रकटसहजभाव· शुद्धचैतन्यबिम्बः,
नयनिकरकरौघैर्ध्वस्तमोहान्धकारः ॥

नोट—पूर्व दिशामें केवली भगवान तीर्थंकर परम देव सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु और जिनचैत्य चैत्यालय विद्यमान हैं तथा सर्वर्द्धि धारक गणधर देव हैं उनको वंदना हो। इसी प्रकार दक्षिण पश्चिम उत्तर दिशामें नमस्कार करे।

नोट—"पडिक्कमामिभंते इरियावहियाएविराहणाए इत्यादि दण्डक पाठको पढ़कर कायोत्सर्ग करना चाहिये। पुनः "पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया" इत्यादि श्लोकोंको पढकर साधु प्रतिक्रमण करना चाहिये।

स्वमतगगनचारश्चारुचारित्रतेजाः,
जयति जगति वीरः केवलज्ञानभानुः ॥ २ ॥

भावार्थ--कर्मरूपी आवरण और समस्त प्रकारके दोषोंको दूर करनेसे जिसने अपने आत्मीक शुद्ध स्वभावको प्रकट कर दिया है। समस्त प्रकारकी कालिमारहित शुद्ध ज्ञायकस्वरूप प्रतिबिंबसे जो प्रकट हो रहे हैं। द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक आदि नयोंके समूहरूपी किरणोंसे मोहान्धकारको जो समूल नाश कर रहे हैं। जो स्याद्वादमतरूपी आकाशमें विहार कर रहे हैं। निष्कलंक और सर्वजन हितकर चारित्ररूपी तेजसे जो सुशोभित हो रहे हैं। ऐसे तीन जगतके समस्त चराचर स्वरूपको प्रत्यक्ष प्रकट करने वाले श्रीमहावीर भगवान रूपी सूर्य सदैव जगतमें जयवंत रहो ॥ २ ॥

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वथा ॥
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते।
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ॥ ३ ॥

भावार्थ—जो अन्तीन्द्रिय सूक्ष्म पदार्थ और स्थूल पदार्थोंको त्रिकालवर्ती समस्त अनन्तानन्त पर्यायोंको एक साथ बाधारहित निरंतर प्रत्यक्ष जानता है, जिसका ज्ञान अविनश्वर और अनंत है ऐसे श्रीवीतराग अष्ट प्रातिहार्य विभूषित त्रिलोक पूज्य श्रीवीर भगवानको भाव भक्तिपूर्वक त्रिकाल नमस्कार है ॥ ३ ॥

ये ऽभ्यासयंति कथयंति विचारयति,
संभावयंति च मुहुर्मुहुरात्मतत्त्वम् ॥
ते मोक्षमक्षयमनूनमनतर्मांख्यं,
क्षिप्रं प्रयांति नवकेवललब्धिरूपम् ॥ १ ॥

भावार्थ—जो आत्मतत्त्वका निरंतर अभ्यास करते हैं, पठन पाठन करते हैं, आत्मतत्त्वका उपदेश करते हैं, शांतिपूर्वक निरंतर विचार करते हैं, स्व हृदयमें मनन करते हैं, वार वार उसी तत्त्वका चिंतवन करते हैं, ध्यान करते हैं वे अविनाशीक महान अनन्तसौख्य वाधारहित मोक्षसुखको शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं। आत्मतत्त्वका विचार करनेवालोंको ही नव केवल-लब्धियां स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं ॥ १ ॥

सामयिकके समय क्या करना चाहिये ?

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्वभूदेसु वेरं मज्झ ण केणवि ॥

भावार्थ—सामायिक करनेके समय सवसे प्रथम समस्त जीवोंके साथ वैरभाव त्याग करनेके लिये, परिणामोंमें विशेष विशुद्धि करनेकेलिये निष्कपटभावसे निस्पृह होकर सव जीवोंको क्षमा करे-मनसे कषाय भावोंका परित्याग करे तथा समस्त जीवोंसे भी क्षमा करनेकी याचना करे। समस्त जीवोंके साथ मैत्रीभावनाको प्रकट करे और किसी जीवके साथ वैरभाव नहीं रक्खे ॥ २ ॥

सामयिकमें विचार।

अशरणमशुभमनित्यं दुःखमनात्मानमावसामि भवं।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायंतु सामयिके ॥ ३ ॥

भावार्थ—इस संसारमें जीवका कोई भी शरण नहीं है मरणसे कोई भी नहीं बचा सक्ता है। यह संसार अशुभ है क्षण भंगुर है दुःख स्वरूप और दुःखका कारण है। इसलिये यह संसार आत्माका हितकारक नहीं है। संसारकी कोई भी वस्तु (धन-भोग-विभव-विषय-और शारीरादि) सुखकारक नहीं हैं। संसारकी समस्त वस्तुऐं आकुलता और दुःखसे परिपूर्ण हैं। मोक्ष शरणभूत है-सुखमय है, अक्षय है, बाधारहित है, आत्माके सत्य स्वरूपमय है। मुझे किस प्रकार मोक्ष सुखकी प्राप्ति हो? इस प्रकारका ध्यान व विचार सामायिकमें करना चाहिये।

सामयिकका स्वरूप।

आसमययुक्तिमुक्तं पंचाघानां मनोवचःकायैः॥
सर्वत्र च सामयिकाः सामायिकं नाम शंसंति॥

भावार्थ—मन वचन कायसे हिंसादिक पंचपापोंका समय-की मर्यादाकर परित्याग करना सो सामयिक है। आत्माके भावोंमें किसी सकल्प विकल्पके द्वारा पंचपापोंकी प्रवृत्ति नहीं करना तथा द्रव्यरूपसे पंच पापोका परित्याग करना सो साम-यिकव्रत है।

सामायिकका ग्रहण (सामायिक करनेका संकल्प)

भगवन् ! नमोऽस्तु ते एषोऽहं पूर्वाह्निक (मध्याह्निक, अपराह्निक) देववंदनां करिष्यामि (इति सामयिक स्वीकारः)

भावार्थ हे अर्हन् भगवन् ! आपके लिये नमस्कार है। यह मैं अमुक· नाम धारक अमुक · गोत्र अमुक···जाति अमुक वर्ण अमुक शाखा और अमुक···आम्नायका इस अमुक·· ग्राममें इस संवत्सरकी अमुक·· मास अमुक तिथिमें प्रातःकालको देव वंदना (मध्यान्हकाल या सायंकाल) कर्म करनेका प्रतिष्ठापन करता हूं और अर्हन्त परमात्माके समक्ष चारों दिशायोंमें दिगंजलि कर सामयिक स्वरूप स्वीकार करता हूं। इस प्रकारका संकल्पकर तीन नति और बारह आवर्त करे।

प्राग्दिग्विदिगन्तरतः केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगीशास्तानहं वंदे ॥ १ ॥
दक्षिणदिग्विदिगन्तरतः केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगीशास्तानहं वंदे ॥ २ ॥
पश्चिमदिग्विदिगन्तरतः केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगीशास्तानहं वंदे ॥ ३ ॥
उत्तरदिग्विदिगन्तरतः केवलिजिनसिद्धसाधुगणदेवाः।
ये सर्वर्द्धिसमृद्धा योगीशास्तानहं वंदे ॥ ४ ॥

भावार्थ—एक एक दिशामे दोनों हाथोंको कमलाकार जोड़कर तीन तीन आवर्त्तकर प्रदक्षिणा पूर्वक एक एक दिशाका श्लोकका उच्चारण करता हुआ १२ आवर्त्त और तीन शिरोनति करे।

लघु सामायिक

सिद्ध सपूर्णभव्यार्थ सिद्धेः कारणमुत्तमम्।
प्रशस्तदर्शनज्ञानचारित्रप्रतिपादनम् ॥
सुरेंद्रमुकुटाश्लिष्टपादपद्मांशुकेसरम् ।
प्रणमामि महावीरं लोकत्रितयमंगलम् ॥

भावार्थ—जो इस भूमंडलके समस्त भव्यजनोंके अभीष्ट मनोरथोंको सिद्ध करनेके लिये पूर्ण कुशल हैं। जो कृतकृत्य हो चुके हैं। जिनने त्रिलोकका अधिपतित्व प्राप्त कर लिया है, सर्व-जीवोंके हितके लिये सर्वोत्कृष्ट सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र स्वरूप मोक्षमार्गको प्रकट करनेवाले हैं, जो भक्तिसे अत्यंत वशीभूत हुए देवेन्द्रोंके मुकुटोंकी मणिको अपने पवित्र चरणकमलोंकी प्रभासे प्रभान्वित करनेवाले और तीन जगतमें महामंगल स्वरूप हैं ऐसे त्रिलोकके प्रभु श्री महावीर भगवानको नमस्कार करता हूं।

सिद्धवस्तुवचोभक्त्या सिद्धान् प्रणवतां सदा।
सिद्धकार्याः शिवं प्राप्ताः सिद्धिं ददतु नोऽव्ययाम् ॥

भावार्थ—सिद्ध और साध्यके भेदसे वस्तु दो प्रकार है। जो वस्तु सर्वांगरूपसे अपने स्वरूपको अत्यत प्राप्त हो जानेसे कृतकृत्यरूप हो चुकी है उस सिद्धवस्तुके वचनोंके श्रवण मात्र से उत्पन्न हुई आभ्यंतर गाढ़भक्तिसे साष्टांग नम्र होकर सिद्ध परमात्माको नमस्कार करता हूं। हे सिद्ध परमात्मन्! आपने

समस्त कार्य सिद्ध कर लिये हैं। हे प्रभो! आपने अविनाशीक मोक्षसुख प्राप्त कर लिया हैं। अतएव हम लोगोंको भी अविनाशीक सिद्धि प्रदान कीजिये।

नमोऽस्तु धूतपापेभ्यः सिद्धेभ्य ऋषिपरिषदे।
सामयिकं प्रपद्येऽहं भवभ्रमणसूदनम्॥

भावार्थ--समस्त प्रकार पापकर्मोंसे सर्वथा रहित सिद्ध परमेष्ठी और मुनीश्वरोंकी दिव्य सभाको नमस्कार है। अब मैं संसारके परिभ्रमणको नष्ट करनेवाले इस सामायिकको प्राप्त होता हूं।

समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना।
आर्तरौद्रपरित्यागस्तद्धि सामयिकं व्रतं॥

भावार्थ—समस्त प्राणीमात्रपर समताभाव होना, शत्रु और मित्रपर समान भाव रखना, प्राणी मात्रपर दयाभाव रखकर संयम पालन करना, मनके रागद्वेष करनेवाले संकल्प विकल्पको जीतना, आर्त और रौद्रध्यानका परित्याग करना और सदैव धर्म ध्यानका विचार करना सो सामायिक है।

साम्यं मे सर्वभूतेषु वैरं न मम केनचित्।
आशाः सर्वाः परित्यज्य समाधिमहमाश्रये॥

भावार्थ-मेरा समस्त प्राणी मात्रपर साम्यभाव हो। मेरा वैरभाव किसी भी प्राणीके साथ नहीं हो। संसारके विषय भोग और इष्ट पदार्थोंकी प्राप्तिकी इच्छाका सर्वथा परित्यागकर निःशल्यभावसे समाधिमरणकी भावना करता हूं।

रागाद् द्वेषान्ममत्वाद्वा हा ! मया ये विराधिताः ।
क्षाम्यंतु जन्तवस्ते मे तेभ्यो मृषाम्यहं पुनः ॥

भावार्थ-किसी प्रकारकी वस्तुके रागभावसे या द्वेषभावसे अथवा मोहभावसे हा ! मैंने जिन जिन प्राणियोंकी विराधना की हो वे प्राणी मुझपर क्षमा करें और मेरा भी उनपर क्षमाभाव है।

मनसा वपुपा वाचा कृतकारितसम्मतैः ।
रत्नत्रयभवं दोषं गर्हे निन्दामि वर्जये ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! मैंने रत्नत्रयके पालन करनेमें मन वचन काय और कृत कारित्त अनुमोदना से जो जो दोष लगाये हों उन दोषोंका परिशोधन करनेके लिये मैं प्रायश्चित्तको स्वीकार कर मैं अपनी आत्माकी इस दुष्प्रवृत्तिकी गर्हा करता हूं और भविष्यमे मुझसे ऐसी प्रवत्ति किसी कालमें नही हो ऐसी भावना करता हुं ।

तैरश्चं मानवं दैवमुपसर्गं सहेऽधुना ।
कायाहारकषायादीन् प्रत्याख्यामि त्रिशुद्धित ॥

भावार्थ—मैं अब इस सामायिकके अनुष्ठानके समय तिर्यंचोंके द्वारा होनेवाला उपसर्ग, मनुष्योंके द्वारा होनेवाला उपसर्ग, देवोंके द्वारा होनेवाला उपसर्ग अथवा पापकर्मके उदय द्वारा होनेवाला उपसर्गको यथात्मशक्ति सहन करता हूं और काय (शरीर) भोजन विषय भोगादिककी इच्छा तथा क्रोध मान माया लोभ आदि कषायोंसे निर्ममत्वभावको धारण करता हूं शरीर भोगोपभोग और कषायोंसे निस्पृह होता हूं ।

रागं द्वेषं भयं शोकं प्रहर्षौत्सुक्यदीनताः ।
व्युत्सृजामि त्रिधा सर्वमरतिं रतिमेव च ॥

भावार्थ-हे भगवन् ! मैं इस सामायिकके समय समस्त बाह्य पदार्थोंसे रागभाव, द्वेषभाव, भय, शोक, हर्षभाव, औत्सुक्यभाव, दीनभाव आदि समस्त प्रकारके भावोंका परित्याग करता हूं। और हे भगवन् ! मैं अपने मन वचन कायकी शुद्धिसे बाह्य पदार्थोंपर प्रीति और अप्रीतिका भी त्याग करता हूं।

जीविते मरणे लाभेऽलाभे योगे विपर्यये ।
बन्धावरौ सुखे दुःखे सर्वदा समता मम ॥

भावार्थ-हे भगवन् ! अब इस सामायिकके अनुष्ठानके समय पर्यन्त मैं अपने जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग, मित्र, शत्रु, सुख और दुख आदि समस्त वस्तुओंमें साम्य-भावको धारण करता हूं। मेरे अब इस समय किसी वस्तुपर राग द्वेष नहीं है। भला बुरा परिणाम नहीं है। सांसारिक इष्ट भोगोपभोग पदार्थोंकी प्राप्तिकी भावना नहीं है और उनकी अप्राप्तिमें दुख भी नहीं है।

आत्मैव मे सदा ज्ञाने दर्शने चरणे तथा ।
प्रत्याख्याने ममात्मैव तथा संवरयोगयोः ॥

भावार्थ-हे भगवन् ! मुझको सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी प्राप्तिका कारण एक यह मेरी आत्मा ही है। तथा काय कषाय आहारादिक दुर्भावोंकी इच्छा रखनेवाली एक यह मेरी आत्मा ही है। समस्त कर्मोंका संवरण करनेके लिये

कारणभूत एक यह आत्मा ही है और पाप कर्मोंका परित्याग करनेवाला यह आत्मा ही है।

एको मे शाश्वतश्चात्मा ज्ञानदर्शनलक्षणः ।
शेषा बहिर्भवा भावाः सर्वे संयोगलक्षणाः ॥

भावार्थ– हे भगवन्! इस निरंतर परिवर्तन संसारमें एक मेरा आत्मा ही अविनश्वर है। संसारके अन्य (काय, भोग, उपभोग, बंधुजन, धन संपत्ति आदि) समस्त पदार्थ विनाशीक हैं, दुःखदायक हैं। दुःखोंके कारणभूत हैं। इन पदार्थों का आत्माके साथ किसी प्रकारका संबंध नहीं है। ये समस्त पदार्थ आत्मासे सर्वथा भिन्न हैं। कर्मोंके संयोगसे ये पदार्थ आत्मस्वरूप प्रतिभासित हो रहे हैं। इसलिये इनके संबंधका परित्याग करनेमें मेरी कोई भी हानि नहीं है। ऐसी भावना से मैं इनसे ममत्वभावका परित्यागकर सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप अपनी अविनश्वर आत्मापर ही मम-त्वभाव करता हूं।

संयोगमूलं जीवेन प्राप्ता दुःखपरंपरा ।
तस्मात्संयोगसंबंधं त्रिधा सर्वं त्यजाम्यहं ॥

भावार्थ–हे भगवन्! इस जीवने अनादिकालसे कर्मोंके संयोग से होनेवाले विषय-भोग-काय आदिके संयोगसे दुःख सहन किये अब तो उनके दुःखोंसे चित्त ऊब गया है। इसलिये इस सामायिकके अनुष्ठानके समय समस्त पुत्र मित्र भाई बंधु-विषय भोग और शरीरसे ममत्वभावका मन वचन कायसे सर्वथा

परित्याग करता हूं और अपने आत्माको कर्मोंसे रहित होनेकी भावना करता हूं।

एव सामयिकात्साम्यभावं मेऽस्त्वखण्डितम्।
वर्ततां मुक्तिमानिन्या वशीचूर्णायितं प्रभो!॥

भावार्थ—हे प्रभो! इस प्रकार सामायिकके अनुष्ठानके समय सदैव मेरे अखंडित साम्यभाव हो। अथवा सामायिककी प्रक्रियासे सदैव मेरे समस्त पदार्थोंमें साम्यभाव होता रहे। और यह साम्यभाव ही मुक्तिरूपो कन्याके पाणिग्रहण करनेके लिये वशीचूर्ण होगा। अर्थात् साम्यभावसे ही इस जीवके संसारका भयानक परिचक्र नाशको प्राप्त होगा और मोक्षका अविनाशोक अनंत सुख प्राप्त होगा।

मोहध्वांतविदारण विशदविश्वोद्भासिदीप्तिश्रियं,
सन्मार्गप्रतिभासक विबुधसंदोहामृतोत्पादकम्॥
श्रीपादं जिनचन्द्र शांतिशरण सद्भक्तिमार्च्चामि ते।
भूयस्तापहरस्य देव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनम॥

हे जिनेन्द्र चन्द्र! आप मोहध्वांतके विदारनेवाले हैं, समस्त लोक अलोकको प्रकाशित करनेवाली ज्ञान लक्ष्मीसे सुशोभित हैं, श्रेष्ठ मार्गके द्योतक हैं, ज्ञानवानोंको अमृत उत्पन्न करनेवाले हैं, शांतिके एक मात्र शरण हैं, संसारतापको हरनेवाले हैं, इसलिये आपके चरण कमलको भक्तिभावसे नमस्कार करता हूं। हे भगवन! आपके फिर दर्शन प्राप्त हो ऐसी प्रार्थना करता हूं।

अथ श्रावक प्रतिक्रमण

निःसंगोहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या,
स्थित्वा गत्वा निषिद्युच्चरणपरिणतोऽन्तःशनैर्हस्तयुग्मम् ।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवंद्यं,
निंदादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेन्द्रम् ॥

अर्थ—परिग्रहका परिमाण कर भव्यजीव अनुपम श्रीजिनेन्द्र देवके मंदिरमें जाकर प्रथम तीन प्रदक्षिणा करे, और भक्तिसे भगवान्‌के दक्षिण हाथ तरफ स्थित होकर 'जय जय जय' 'निस्सही निस्सही निस्सही' इस प्रकार उच्चारणकर अति विनयसे अपने दोनों हाथोंको मस्तक ऊपर रखकर पापके नाश करनेवाले निंदासे रहित, अविनाशीक, परमपवित्र और ज्ञानके सूर्य ऐसे श्रीजिनराजको बारम्बार नमस्कार कर, उनके गुणोंका अनन्य-भावसे चिंतवन करे ।

भावार्थ प्रतिक्रमण (लगे हुए दोषोंकी विशुद्धि पूर्वक त्याग भाव) स्वात्मज्ञान विना नहो होता है । स्वात्मज्ञान उत्पन्न होनेके लिये, मोहका त्याग करना नितांत आवश्यक है । मोहका त्याग-पर वस्तुओंका परिमाण अथवा पर वस्तुओंके त्याग करनेसे होता है । इस लिये प्रतिक्रमण करनेके प्रथम समस्त प्रकारके परिग्रहका परिमाण करना चाहिये ।

इसका कारण एक यह भी है कि दोषोंकी निवृत्ति राग द्वेषके अभावसे होती है । राग और द्वेष दोनों पर वस्तुओंके सम्बन्धसे,ही होते हैं । इसलिये परिग्रहका परिमाण करना अति आवश्यक है ।

मोहरहित, परम विशुद्ध, परमशांत; अनंत सुख सहित, सर्वज्ञ और त्रिलोक पूज्य अरहंत भगवान् अमूर्तीक (आत्मा-अमूर्तीक होनेसे अतीन्द्रिय है) आत्माका प्रत्यक्ष अनुभव करा रहे हैं।

इसलिये प्रतिक्रमण करनेवाले भव्य जीवोंको स्वात्म-बोध प्राप्त होनेके लिये अरहंत प्रभुके गुणोंका चिंतवन करना चाहिये, जिससे स्वात्म-बोधकी प्राप्ति हो और दोषोंसे ग्लानि उत्पन्न हो। यद्यपि बद्धकर्म दोषोंकी ग्लानिसे निर्झरित नहीं होते, तथापि पापाचरणसे भय और आत्मोन्नतिकी विशुद्ध भावना स्वयमेव प्रकट होती है।

पडिक्कमामि भंते, इरियावहियाए, विराहणाए अणागुते अइगमणे, णिग्गमणे ठाणेगमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे विज्जुग्गमणे, हरिदुग्गमणे उच्चारपस्सवण खेलसिंहाणय वियडिपईठावणियाए जे जीवा एइंदिया वा, वेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचेंदिया वा, पण्णोल्लिदावा, पेल्लिदावा संघदिदावा, संघादिदावा, उद्दादिदावा, परिदाविदावा, किरिच्छिदावा, लेसिदावा, छिदिदावा, भिदिदावा, ठाण दोवा ठाणचंकमणदोवा, तस्सुत्तरगुण तस्सपायच्छित्तकरण तस्स विसोहिकरणं अरहंताणं जाव भयवताणं णमोकारं पज्जुवासं करेमि तावकायं पावकम्म दुच्चरियं वोस्सरामि ॥

भावार्थ—प्रतिक्रमण करनेका मुख्य कारण यह है कि

आत्मामें साम्यभाव, आत्म विशुद्ध भावना और समस्त जीव मात्रमें मैत्री भावनाकी जाग्रति। और यह इसीलिये पाक्षिक, नष्ठिक, साधक और पूज्य मुनीश्वर निरंतर करते हैं। प्रतिक्रमणाकी दृढताके लिये अणुव्रत, महाव्रत और समितियोंका पालन किया जाता है। अभ्यासके लिये समितियां श्रावकलोक भी न्यूनाधिकतासे पालन करते हैं। समितियोंका पालन करनेपर भी सूक्ष्म जीवोंकी बाधा होना संभव है इसलिये प्रतिक्रमण करते समय यह विचार करना चाहिये कि यत्नाचार पूर्वक गमन करने पर भी मुझसे जीवोंकी विराधना हुई होगी यह मेरी कायरता है, मैं अपनी इस अशक्तिसे उत्पन्न हुये दोषोंको आत्मग्लानि पूर्वक (मिच्छामि दोक्कणं) छोड़ना चाहता हूं।

प्रमाद और अज्ञानतासे गमन करनेमें, विना प्रयोजन इधर उधर भटकनेमें, व्यापारार्थ सचित्त भूमिपर गमन करनेमें, मोहसे समस्त प्रकारक आरंभ करनेमें, कुत्सित स्थान (जिस स्थानपर अनायास ही जीव बाधा हो) पर विहार करने, वीभत्स (कूद फांद आदि) गमन करनेमें, प्राणियोंसे परिपूर्ण भूमिपर गमन करनेमें, हरित वनस्पति शैवाल कीचड़, अनंतकाय जिस भूमिमें निवास करते हों ऐसे स्थानपर गमन करनेमें, अनंत जीव वाली भूमिपर मलमूत्र क्षेपण करनेमें, लार, कफ और थूकवाली भूमिपर कूदनेमें और आद्रित भूमिपर कार्य करनेमें जो एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय जीवोंको मैंने पीड़ा दी हो, पेलिकर दुख दिया हो, एकत्र कर त्रास दिया

हो, संघट्टितकर नाश किये हों, उपद्रवकर आघात पहुंचाया हो, संतापित किये हों, क्लेशित किये हों, लेस दिये हों, लीपदिये हों, पांव (पाद) से कुचल दिये हों, घसीटकर हानि पहुंचाई हो, लकड़ीसे पीटे हों, अस्त्रशस्त्रसे छेदे हों, अंगोपांगोंको काटा हो, स्थानांतरकर दुखित किये हों, मानसिक पीड़ा दी हो, अपहरण कर दुःख दिया हो, वचनसे मर्म छेदन किया हो। कुमार्गमें लगाकर पतित किये हों और मिथ्यामार्गका उपदेशकर अनंत दुःखोंके समुद्रमें गिराये हों, इत्यादि अनेक प्रकार जीवोंको कष्ट दिया हो उन समस्त कर्मोंका मैं इस समय विशोधन करता हूं। अपनी अज्ञान और प्रमाद दशासे क्षोभित होता हूं। आत्मग्लानि से भयभीत हूं। हिंसाके कार्योंसे डरता हूं। मेरी आत्मासे अब किसी जीवको बाधा न हो ऐसी दृढ़ भावना "सत्त्वेषु मैत्रीं"का बार बार चिन्तवन करता हूं। आत्मशक्तिका ऐसा विकाश चाहता हूं कि जिससे मैं सब जीवोंके साथ साम्यभाव प्रगट कर सकूं और सबका उत्कर्ष धारण कर सकूं।

मैं अपने कृत कर्मों (किये हुए कर्मों) का पश्चात्ताप करता हूं, मेरेसे जिन जीवोंको दुख प्राप्त हुआ है उसके लिये मैं समवेदना प्रकट करता हूं। और मेरे मनमें इतनी विशुद्धि हो कि अब मुझसे भविष्यमें ऐसा अनिष्ट किसी जीवका न हो। जब तक भगवान् अरहंत प्रभुका प्रतिपादित णमोकार मंत्र नववार स्पष्ट उच्चारण न कर लूं तबतक समस्त पापकर्म, दुष्टकृत्य और शरीरसे ममत्वभावको छोड़ता हूं।

(नोट—९ वार णमोकार मंत्रकी जाप २७ श्वासोच्छ्वासमें देनी)

ईर्यापथे प्रचलताद्य मया प्रमादा-
देकेन्द्रियप्रमुखजीवनिकायबाधा ॥
निर्वर्त्तिता यदि भवेद् युगांतरे वा
मिथ्या तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ॥ १ ॥

अर्थ—ईर्यापथ पूर्वक गमन करनेपर भी आज मुझसे प्रमाद और अज्ञानके वश एकेन्द्रिय प्रभृति जीवोंकी जो विराधना हुई हो, वह अरहंत परमात्माकी भक्तिसे मिथ्या हो।

करचरणतनुविघातादटतो निहितः प्रमादतः प्राणी।
ईर्यापथमिति भीत्या मुञ्चे तद्दोपहान्यर्थम् ॥ २ ॥

अर्थ—शरीर और हाथ पांव आदि अवयवोंके इधर उधर हिलानेसे, प्रमादवश जिन जीवोंको कष्ट हुआ है, वह मैं अपनी ईर्यापथकी विशेष शुद्धिके लिये प्रतिक्रमण करता हूं और उससे उत्पन्न हुए पापोंको मिथ्या चाहता हूं।

इच्छामि भंते इरियावहियस्स आलोचेउं पुवुत्तरदक्षिण-पच्छिम चउदिसु विदिसासु विहरमाणेण जुगंतरदिट्ठिणा दट्ठवा डवडवचरियाए पमाददोसेण पाणभूदजीवसत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ ३ ॥

अर्थ—हे प्रभो! अब मैं पाप कर्मोंसे अत्यंत भयभीत हो गया हूं। इसलिये चारों दिशा और विदिशाओंमें ईर्यापथ पूर्वक गमन करते हुए जो पापकर्म मुझसे हुआ है उसको मैं बार बार

आलोचना करता हूं। प्रमाद तथा दृष्टिदोषसे जीवोंका घात स्वयं किया हो, दूसरेसे कराया हो, अन्यके करनेमें भला माना हो इत्यादि सब कार्यों से उत्पन्न हुए मेरे दोष मिथ्या हों।

प्रतिक्रमणकी महिमा।

जीवे प्रमादजनिताः प्रचुराः प्रदोषा·
यस्मात्प्रतिक्रमणतः प्रलय प्रयांति ॥
तस्मात्तदर्थममल गृहिबोधनार्थं
वक्ष्ये विचित्रभवकर्मविशोधनार्थम् ॥ १ ॥

अर्थ – जीव प्रमाद और अज्ञानतासे अनंत (दोष) पाप कर्म करते हैं। प्रतिक्रमण करनेसे उन दोषोंकी शांति हो जाती हैं इस लिये कृत कर्मों की शुद्धिके लिये यह प्रतिक्रमणका स्वरूप गृहस्थोंके लिये प्रतिपादन किया जाता है। भावार्थ-प्रतिक्रमण करने से मनको शुद्धि, किये हुए कर्मोंकी निर्जरा और दोषोंसे भय उत्पन्न होता है।

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया मायाविना लोभिना।
रागद्वेपमलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ॥
त्रैलोक्याधिपतेर्जिनेन्द्र भवतः श्रीपादमूलेऽधुना
निंदापूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिपु· सत्पथे ॥२॥

अर्थ—हे त्रैलोक्य प्रभो ! हे जिनेन्द्र ! मैं बड़ा पापी, दुष्ट, अज्ञानी (जडबुद्धि), मायाचारी और लोभी हूं। मने अपने मनको

रागद्वेषसे मलीनकर अनंत दुष्कर्म किये हैं। हे जिनराज! अव मैं आपके चरण कमलोंको शरण लेकर आपके समक्ष उपस्थित हो निंदापूर्वक उन सवको छोडता हूं और सन्मार्गमें चलनेके लिये वाध्य होता हूं तथा भविष्यमें मुझसे कुत्सित कर्म न हों, ऐसी मेरी इच्छा है।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झ ण केणवि॥ ३॥

अर्थ—मैं समस्त जीवोंपर क्षमा करता हूं और मुझे भी सब जीव क्षमा करो। मेरी समस्त जीवमात्रमें मित्रता हो। मेरे साथ किसीका भी वैर नहीं है।

भावार्थ—साम्यभाव धारण करनेके लिये सबसे प्रथम यह आवश्यक है कि अपने मनकी अत्यंत विशुद्धि करे और वह इस प्रकार-कि मनको विकारित करनेवाले क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा आदि दुर्गुणोंको हृदयसे निकाल डाले, किसीने भी अपना अनिष्ट किया हो तो भी उसके ऊपर क्षमा धारण करे। इतना ही नहीं किन्तु उसके साथ बंधुत्व भाव रहे। कदाचित् अपनेसे किसीका अनिष्ट होता हो तो उससे अपने अपराधकी क्षमा चाहे और भविष्यमें जीवमात्रको अपना बंधु समझकर किसीसे विरोध न कर साम्यभाव धारण करना चाहिये।

रागबंध प दोषं च हरिस्सं दीणभावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरिदं च वोस्सरे॥ ४॥

अर्थ—मैं रागसे किया हुआ कर्मबंध, अनिष्ट संयोग और इष्ट वियोग होनेसे उत्पन्न हुआ द्वेष, विषय प्राप्तिसे उत्पन्न

हुई दीनता, अभिमानसे उत्पन्न हुआ मदोन्मत्तता, इस-लोक और परलोक सम्बन्धी भय, इष्ट वियोगसे उत्पन्न हुआ शोक, परवस्तुकी आकांक्षारूप मनोविकारसे उत्पन्न हुआ रति-भाव और अरतिभाव आदि समस्त विकार भावोंको छोडता हूं। इस प्रकार समस्त पर द्रव्यसे राग द्वेष, हर्ष-विषाद, आदि व्यामोहताका परित्याग करे और आत्माकी परम विशुद्ध अव-स्थाका विचार करे।

हा दुट्ठकयं हा दुट्ठ चिंतिय भासियं च हा दुट्ठं।
अतो अंतो उज्झमि पच्छुत्तावेण वेयंतो ॥ ५ ॥

अर्थ—हाय! हाय!! मैंने दुष्ट कर्म किये, हाय! हाय!! दुष्ट कर्मोंका बार बार चिंतवन किया। हाय! हाय!! मैंने दुष्ट मर्मभेदक वचन कहे। इस प्रकार मनवचन और कायकी दुष्टता से मैंने अनंत कुत्सित कर्म किये। इन कार्योंके बदले अब मुझे अत्यंत पश्चात्ताप होता है और इस अज्ञान दशासे मेरा अंतःकरण अत्यंत क्लेशित हो रहा है। मैं कृतकर्मोंका जैसे स्मरण करता हूं वैसे मुझे मेरी आत्मापर अतिशय ग्लानि उत्पन्न होती है और पश्चात्ताप होता है।

नोट—परम पवित्र अरहंत भगवान्‌के समक्ष इस प्रकार अपने मन वचन कायसे किये हुए दोषोंको कहे, आलोचना करे, गर्हा करे और आत्मनिंदा पूर्वक प्रतिक्रमण करे।

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदा वराहसोहणयं।
णिंदणगरहणजुत्तो मणवचिकायेण पडिक्कमणं ॥६॥

अर्थ—द्रव्य क्षेत्र काल और भावके निमित्तसे किसी जीवकी विराधना अथवा प्राणपीड़ा हुई हो, वह मैं आत्मनिंदा और गर्हा (दोषोंको चितवन पूर्वक ग्लानिका होना) पूर्वक मन वचन कायकी शुद्धिसे परित्याग करता हूं।

एइंदिय बेंदिय तेइंदिय चउरेंदिय पंचेंदिय पुढविकाइय, आउकाइय, तेउकाइय, वाउकाइय, वणप्फदिकाइय, तस्स-काइय एदेसि उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

अर्थ—एकेन्द्रिय जीव (जिनके एक स्पर्शन ही इन्द्रिय होती है) दो इन्द्रिय जीव (जिनके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रिय हों) तीन इन्द्रिय जीव (जिनके स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रिय हों) चार इन्द्रिय जीव (जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रिय हों) पांच इन्द्रिय जीव (जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत ये पांच इन्द्रिय हों), पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रस (दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंको त्रस कहते हैं) कायके जीवोंको मैंने स्वतः मारे हों, दूसरेसे मराये हों, अन्यके मारने पर अनुमोदना की हो अथवा उक्त प्रकारके जीवोंको संताप दिया हो, दूसरेसे संताप दिलाया हो, अन्यके संतापित करनेमें सहमत हुआ हो। अथवा प्राणियोंके अंगोपांगका वियोग किया हो, कराया हो, करनेको भला माना हो इत्यादि

अनेक प्रकार मुझसे जिन जीवोंको पीड़ा हुई है उससे उत्पन्न हुए पापकर्मों का परित्याग करता हूं। मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे जिन जीवोंका घात मुझसे हुआ है वह निरर्थक हो।

दंसणवयसामाइय पोसहसचित्तरायभत्तीय।
बम्भारभपरिग्गह अणुमणमुद्दिठदेसविरदो य॥
एयासु यथा कहिदं पडिमासु पमादाइकया।
इच्चारं सोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं॥

अर्थ—दर्शन १ व्रत २ सामायिक ३ प्रोषधोपवास ४ सचित्तत्याग ५ रातिभुक्तत्याग ६ ब्रह्मचर्य ७ आरंभत्याग ८ परिग्रहत्याग ६ अनुमतित्याग १० और उद्दिष्टत्याग ११ इसप्रकार श्रावककी ग्यारह प्रतिमा होती हैं। इन प्रतिमाओंका व्यक्त रूप अथवा समस्तरूप अभ्यासरूप अथवा व्रतरूप पालन पाक्षिक; नैष्ठिक श्रावक करते हैं। प्रतिमा धारणा चाहे किसी प्रकारसे हो परन्तु संभव है कि प्रमाद और अज्ञानसे अतीचार-अनाचार अथवा व्रतभंगरूप दोष लगे हों, उसको मैं उपस्थापना करता हूं।

अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खिकय सम्मत पुव्वगं सव्वदं दिढव्वद समारोडियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु॥

अर्थ—अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु

इन पंच परमेष्ठीकी साक्षीपूर्वक सम्यक्त्वसहित उत्तम व्रतोंको दृढ़ता मेरे हो सम्यग्दर्शन सहित सदाचारकी प्राप्ति मेरे हो।

देवसियं[1] पडिक्कमणाए सव्वाइच्चार[2] सोहिणिमित्त पुव्वापरियकमेण आलोयण सिरी सिद्धभत्ति काउस्सग्गं करोमि।

नोट – १ प्रतिक्रमण चार प्रकार होता है। दैवसिक (दिवस संबंधी), रात्रिक (रात्रि सम्बन्धी), पाक्षिक (१५ दिन संबंधी) मासिक (चातुर्मासिक और सांवत्सरिक) यदि दिवसका करना है तो देवसिय शब्द लगाओ। यदि रातिका प्रतिक्रमण करना है तो राइय शब्द लगाओ। जैसा प्रतिक्रमण करना हो वैसे शब्दकी योजना यहां पर करनी चाहिये।

२–अतीचार–व्रतादिकोंका पालन करनेमे वाह्यभ्यंतर कारणोंके लिये व्रतोंकी दृढ़ता रखते हुए भी कुछ भंगरूप दोषोंका उत्पन्न करना अतीचार है। भंगाभंगवृत्तिको अतीचार कहते हैं।

अनाचार–मनमें कुछ विकार होना और ऐसे प्रमादसे व्रतमें शिथिलताका होना अनाचार है।

व्रतभंग–व्रतका एक देश छेद करना व्रत भंगता है। और अनर्गल (स्वेच्छाचार पूर्वक) प्रवृत्ति होकर स्वच्छन्द रहना व्रत नाशता है।

व्रतका पालन–मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे होता है। व्रतोंके पालन करनेके लिये वाह्याभ्यंतर शुद्धिको विशेष

अर्थ—दिवस संबंधी शारीरिक, मानसिक और वाचनिक कार्य करनेमें जो दोष मैंने किये हों, उनका प्रतिक्रमण करता हूं और अपने मनकी विशुद्धिके लिये अपने किये हुए दोषोंकी वार वार आलोचना करता हूं दोषोंसे सर्वथा मुक्त श्रीसिद्ध परमात्माका स्वरूप चिन्तवन कर सिद्धभक्तिमें लीन होता हूं।

नोट-सिद्धभक्तिके लिये ९ वार णमोकार मंत्रकी जाप देना चाहिये। णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरीयाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं। चत्तारि मंगलं, अर-हंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलिपण्णतो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगोत्तमा, अरहंत लोगोत्तमा, सिद्ध लोगोत्तमा, साहुलो-गोत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मोलोगोत्तमा। चत्तारिसरणं पव्वज्जामि, अरहंतसरणं पव्वज्जामि, सिद्धसरणं पव्वज्जामि, साहुसरणं पंव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

आवश्यकता होती है। आभ्यन्तर शुद्धिके लिये मनकी पवित्रता प्रधान कारण है। मानसिक ग्लानिसे ही प्रायः व्रतोंमें अतीचार लगते हैं। इसलिये मनको सदैव शुद्ध रखना चाहिये।

वाह्य शुद्धि भी व्रतोंको स्थिर करनेमें प्रधान कारण है। चंचल बुद्धि कुछ सहज निमित्तके मिलने पर ही चलित हो जाती है और मन तथा आत्माके ऊपर अपना अधिकार जमा लेती है। यह सब जानते हैं कि संगतिका असर तत्काल होता है "चिरंतनाभ्यासनिवंधनेरिता गुणेषु दोषेषु च जायते मतिः" इसलिये वाह्यशुद्धि पर ध्यान रखना चाहिये।

अड्ढाईदीवदो समुद्देसु पण्णारस कम्मभूमीसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं सिद्धाणं बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं अंतयडाणं पारयडाणं धम्मायरियाणं धम्मदेसयाणं धम्मणायगाणं धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं देवाहिदेवाणं णाणाणं, दंसणाणं चरित्ताणं सदा करेमि। किरियम्म करेमिभंत्ते पडिक्कमणं सावज्जोगं पच्चक्खामि जावनियमं तिविहेण मणसावचिया कायेण ण करेमि णा कारेमि अण्णंपि। करंतं ण समणुमणामि तस्स भंत्ते अइचारं पडिक्कमामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं जाव अरहंताणं भयवंताणं णमोकार पज्जुवासं करेमि तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

---

१ अढाईद्वीप और पंद्रह कर्मभूमिमें होनेवाले सयोगकेवली, (अरहंत) संसारके भयको नाश करनेवाले तीर्थंकर, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, और सर्वसाधु ये पांच परमेष्ठी हैं। ये सत्य मार्गका प्रत्यक्ष अनुभव कराते हैं। इसलिये इनकी साक्षी पूर्वक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रको धारण करता हूं। दूसरोंको इस सत्यमार्ग पर चलनेका उपदेश करूंगा। मुझसे इस मार्गमें चलते हुए अतीचार आदि दोष लगे हों उनकी शुद्धिके लिये मन वचन-कायकी विशुद्ध भावनासे आत्मनिंदा पूर्वक त्याग करता हूं।

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंत जिणे।
णरपवरं लोयमहिए विहुयरयमले महप्पणे ॥
लोयस्सु ज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे ।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो ॥
उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च ।
सुमइं च पोमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥
सुविहिं च पुप्फयंतं सीयलसेयं च वासुपूज्जं च ।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वंदामि ।
कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च मुणिसुव्वयं च ।

---

१ कर्म मल रहित, त्रिलोक पूज्य और ज्ञानसे परिपूर्ण तीर्थंकर, केवली भगवान् और केवली प्रणीत जिनवरोंको पुनः पुनः स्मरण कर वंदना करता हूं। ऋषभादि वीरान्त चतुर्विंशति देवको भावभक्तिसे वंदना करता हूं। ये चौवीस भगवान् जन्म मरणादि समस्त दोष रहित, परम शांत, अनंत सुखसंपन्न, मंगलमय लोकोत्तम और शरणभूत हैं। सिद्ध परमात्मा भी समस्त कर्ममल रहित, परम विशुद्ध, शुद्ध चैतन्य रूप, अनंतगुणोंके पिंड हैं। शुद्धात्माका प्रत्यक्ष दर्शन इनकी भक्तिसे प्राप्त होता है। तीर्थंकर केवली, परम ध्यानकी मूर्ति होनेसे यागी हैं जिन चैत्यालय यह धर्मका आयतन है। इसलिये मैं प्रतिक्रमण करते समय तीर्थंकर, केवली, सिद्ध जिनधर्म, जिनचैत्यालयको वन्दना करता हूं।

णमिं वंदे अरिट्ठणेमिं तहपासं वद्धमाणं च।
एवमए अभिच्छुया विहुयरयमला पहीणजरमरणा॥
चउविसंपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।
कित्तिय वंदिय महिया ऐदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा॥
आरोगाणाणलाहं दितु समाहिं च मे बोहिं।
चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चा वहियं पयासंता।
सायरमिव गभीरा सिद्धासिद्धं मम दिशंतु।
यावंति जिनचैत्यानि विद्यन्ते भुवनत्रये।
तावंति सततं भक्त्या त्रिःपरीत्य नमाम्यहं॥

नोट—'णमो अरहंताणं' यहांसे प्रारम्भ कर "त्रिपरीत्य नमाम्यहं" पर्यन्त मूल पाठको पढ़कर नव वार नमस्कार मंत्रको जाप्य देना चाहिये। और यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जिस जिस स्थान इस पाठका उल्लेख किया हो वहां पर यह पाठ पढ़कर जाप देकर कायोत्सर्ग करना चाहिये।

श्रीमते वर्द्धमानाय नमो नमितविद्विषे
यद् ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते॥

अर्थ—मोहादि भयंकर शत्रुओंका नाश करनेवाले, और लोकके जाननेवाले ऐसे श्रीवर्द्धमान भगवानके लिये नमस्कार है।

तवसिद्धे णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दंसणम्मिय सिद्धे सिरसा णमस्सामि॥

अर्थ—तप, नय, ज्ञान, संयम, चारित्र, ज्ञान और दर्शनादिसे सिद्ध पदको प्राप्त हुए सिद्ध परमात्माको नमस्कार है।

इच्छामि भंते सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कउ तस्स आलोचेउ सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचरित्त जुत्ताण अट्ठ विहकम्म-विप्पमुक्काणं अट्ठगुण सपण्णाणं उड्ढलोयम्मिपयट्ठिम्मि पयट्ठियाणं तव सिद्धाण णयसिद्धाणं संजमसिद्धाणं चरित्त-सिद्धाणं सम्मणाण सम्मदंसण सम्मचरित्तसिद्धाण अतीदाणागदवट्टमाणकाल तय सिद्धाण सव्वसिद्धाणं सया-णिच्च कालं अंचेमि पूज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खउ कम्मक्खउ बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरणं जिणगुण-संपत्ति होउ मज्झं।

इच्छामि भंते देवसिय आलोचेउ सिद्धभक्ति कायोत्सग्गं करेमि।

अर्थ-हे भगवन्! मैं सिद्धभक्ति धारण करनेके लिये दिवस संबंधी कृत कर्मोंकी आलोचना करता हूं। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रमयी, आठ कर्म रहित, आठ गुण सहित, लोकके अंत भागमें विराजमान तप ज्ञान संयम सम्यक्चारित्र दर्शन और परम-ध्यानादि उत्तम गुणोंसे सिद्ध अवस्थाको प्राप्त हुए भूत, भविष्य और वर्तमान काल सम्बन्धी समस्त सिद्ध भगवानको मैं अभ्यर्चना करता हूं, पूजा करता हूं, गुणोंका चिंतवन करता हूं। नमस्कार करता हूं। सिद्ध भक्तिसे मेरे दुःखोंका नाश, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति, सुगति गमन, समाधिमरण और जिनगुण प्राप्ति हो। भावार्थ-मेरी आत्मा सिद्धात्माके समान शुद्ध अनंत गुणमय, सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रमयी निष्कलंक और अक्षय

है परंतु कर्ममलसे विकृत रूप हो रहा है। "मेरी आत्मा परम शांत और सुखी हो" इस भावनाकी सिद्धिके लिये सिद्धभक्ति धारण करता हूं। इस प्रकार सिद्धोंके गुणोंका चिन्तवन कर आत्मस्वरूपका विचार करते हुए अपने दोषोंकी आलोचना करे।

(६ वार नमस्कार मंत्रको जाप्य देकर सिद्ध भक्तिका कायोत्सर्ग धारण करे।)

श्रावककी ग्यारह प्रतिमाओंका स्वरूप।

पंचुंबर सहियाइं सत्तविवसणाइ जो विवज्जइ।
सम्मतविशुद्धमइ सो दंसण सावउ भणिओ ॥ १ ॥

अर्थ—पाक्षिक, नैष्ठिक और साधक इन प्रकार श्रावकके तीन भेद हैं। पाक्षिक श्रावक—वह हो सक्ता है जो सबसे प्रथम श्री जिनेन्द्र देवके प्रतिपादित सात तत्वोंका यथार्थ श्रद्धान करे। क्योंकि धर्मकी मूल भोत्ति श्रद्धा है-विश्वास है विना इसके धर्मपथका अनुयायी हो नहीं सक्ता। इसका कारण एक यह भी है कि सुख-शांति और प्रेम ये तीनों धर्मके अंग हैं और ये विना विश्वासके यथार्थ नहीं हो सक्ते हैं। इसलिये जिन-आज्ञाको हृदयसे धारण करता हुआ कषायोंके घटानेके लिये (कषायें ही आत्मस्वरूपके प्रकट होनेमें बाधक हैं) सदाचारका पालन करे। पाक्षिक श्रावक "जिनदर्शन १, जलगालन २, रात्रिभोजन त्याग ३, पांच उदंबर (बड़फल-पीपलफल-कठूमर-पाकरफल-उदंबर) त्याग ४, मद्यत्याग ५, मधुत्याग ६, मांसत्याग और ७ जीवदया

प्रतिपालन ८ ये आठ मूल गुणोंका पालन करता है। अभ्यासके लिये पांच अणुव्रत (हिंसा-झूठ-चोरी-कुशीलका त्याग और परिग्रहका परिणाम), तीन गुणव्रत चार शिक्षाव्रत आदि व्रतोंका पालन करता है। सप्त व्यसनो (जुआ खेलना, मांस भक्षण, मद्य पान, शिकार खेलना, चोरी करना, वेश्यागमन करना और पर-स्त्री सेवन करना) को उभयलोकमें दुःखदायक समझकर सेवन नहीं करता है। अभक्ष्य सेवन भी नहीं करता है। बाह्य और अभ्यन्तर शुद्धिके लिये पूर्ण प्रयत्नशील होता है। षट् आवश्यक (देवपूजा १ गुरु उपासना २ स्वाध्याय करना ३ संयम पालन करना ४ तप धारण करना ५ और सुपात्रको दान देना ६) कर्मोंको नियमित करता है। ये सब कर्तव्य पाक्षिक श्रावकके हैं इन कर्तव्यके साथ धार्मिक नीति और व्यवहार नीति भी पालन करना चाहिये। सबसे प्रथम पाक्षिक श्रावकको २५ दोष रहित सम्यक् दर्शन निर्दोष पालन करना चाहिये।

नैष्ठिक श्रावक उक्त समस्त कर्तव्योंको पूर्ण रूपसे पालन करता है तथा सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि विशेष रखता है। ग्यारह प्रतिमायें नैष्ठिक तथा साधक श्रावककी होती हैं। दर्शनप्रतिमा धारण करनेवालोंके भी उक्त कर्तव्य हैं।

पंच अणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खाव्वयाइं चत्तारि विजाणिविदियम्मि ठाणम्मि॥

अर्थ—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, और चार शिक्षाव्रतोंको जो नियमसे पालन करता है वह व्रत प्रतिमा धारक है।

पाणादिवादि विरदि सच्च मदत्तस्स वज्जण चेव ।
थुलयड बभचेरं इच्छाये गंथपरिमाण ॥ ३ ॥

अर्थ-स्थल हिंसा, झूंठ, चोरी कुशीलका त्याग और परिग्रहका परिमाण ये पांच अणुव्रत हैं।

जे तसकाइय जीवा पुव्व णिद्दिठाण हिंसि दव्वा ।
ए इंदिय विणुकारण तं पढ़मं वद थूलं ॥ ४ ॥

अर्थ-जो आंखोंसे दीख सकें, ऐसे त्रस जीवोंको नहीं मारना तथा विना प्रयोजन एकेन्द्रिय जीवोंकी हिंसा नहीं करना सो प्रथम अहिंसाणुव्रत है।

अलियणं जपणीयं पाणिवह करंतु सच्चवयणपि ।
रोयेण य दोसेण य णेयं विदियं वयं थूलं ॥ ५ ॥

अर्थ-राग द्वेषसे अनीति वचन नहीं कहना और जिन वचनोंके कहनेसे किसी जीवको हिंसा होती हो ऐसा सत्य वचन भी नहीं बोलना सो सत्याणुव्रत है।

पुरगामि पट्टणाइसु पडिय णठ च णिहियवीसरीयं ।
परदव्वमगिण्हं तस्स होय थूलं वयं तिदियं ॥ ६ ॥

अर्थ-नगर, ग्राम और चोड़ाया आदिमें पडा हुआ, भूला हुआ, गिरा हुआ, पराया (अन्यका) द्रव्य नहीं लेना सो अचौर्याणुव्रत है।

सव्वेसु इत्थि सेवा अणंगकीडा सयाविवज्जंतो।
मूलयड बंभचारी जिणेहिं भणियो पवयणम्मि ॥ ७ ॥

अर्थ-पर्वके दिवसोंमें सर्वथा स्त्रीमात्रका त्याग करना, पर-स्त्रीका सेवन नहीं करना और अनंगक्रीड़ा नहीं करना सो ब्रह्मचर्याणुव्रत है।

जं परिमाणं कीरइ धणधण्णहिरण्णकणयणाईणं।
तं जाण पंचमवयं णिद्दिट्ठं मुवासयज्झयणे ॥ ८ ॥

अर्थ-धन, धान्य, चांदी, सुवर्ण आदि परिग्रहका परिमाण करना सो परिग्रह परिमाण नामका अणुव्रत है। इस प्रकार ये पांच अणुव्रत हैं।

पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिमासु काऊण जोयणपमाणं।
परदो गमणणियत्ती दिसि गुणव्वयं पढमं ॥ ९ ॥

अर्थ—पूर्वोत्तरादि चारों दिशामें परिमाणकर उसके वाहर नहीं जाना सो प्रथम गुणव्रत दिग्व्रत है।

वयभंगकारणं होई जम्मि देसम्मि तत्थ णियमेण।
कीरइ गमणणियत्ती तं जाण गुणव्वयं विदियं ॥ १० ॥

अर्थ-दिग्व्रतके अभ्यन्तर दिशाओंको मर्यादाकर वाहर नहीं जाना तथा जिस देशमें व्रतके भंग होनेकी संभावना हो ऐसे देशमें नहीं जाना सो द्वितीय देशव्रत नामक गुणव्रत है।

अयदंड पास विक्कय कूडतुला माणकूड परिमाणं।
ज सग हो ण कीरइ तं जाण गुणव्वयं तिदियं ॥ ११ ॥

अर्थ-अनर्थदण्ड-पापोपदेश, हिंसादान, दुःश्रुति, अपध्यान और प्रमादचर्या भेदसे पांच प्रकार है। तथापि इसके अनंत भेद होते हैं। इन सबका यही अभिप्राय है कि जिन कार्योंसे कुछ

प्रयोजन विशेष सिद्ध न होता हो और हिंसा तथा क्लेश परिणाम अधिक होते हों ऐसे लोहेके शस्त्र, लाठी आदि हिंसाका व्यापार, झूठी तराजू, खोटे वांट आदिसे व्यापार आदिका त्याग करना सो तृतीय गुणव्रत है।

जं परिमाणं कीरइ मंडणतंबुलगंधपुप्फाण।
तं भोयविरइ भणिय पढम सिक्खावयं सुत्ते॥ १२॥

अर्थ—भोग और उपभोगसे विषयोंका सेवन होता है। भोग उसे कहते हैं जो एकवार भोगनेमें आवे। शरीरको शृंगार करनेवाली चीजें, पान, सुगंधित पदार्थ तेल इत्र पुष्पादिका परिमाण करना सो भोगविरति शिक्षाव्रत है।

सगसत्तीए महिला वत्थाभरणाण जंतु परिमाणं।
तं परिभोय णिव्वुत्ती विदियं सिक्खावयं जाणे॥ १३॥

अर्थ—वार वार भोगनेमें आवे उसे उपभोग कहते हैं। उपभोगरूप स्त्री, वस्त्र, आभरण आदिके सेवन करनेका नियम करना सो दूसरा शिक्षाव्रत है।

अतिहिस्स संविभागो तिदियं सिक्खावयं मुणेयव्वं।
तत्थ वि पंचाहियारा णेया सुत्ताण मग्गेण॥ १४॥

अर्थ—उत्तम मध्यम और जघन्य भेदसे पात्र तीन प्रकार हैं। पात्रमें चार प्रकारका दान देना तथा चैत्य, चैत्यालय, सिद्धक्षेत्र, शास्त्र, स्वाध्यायालय, विद्यालय, औषधालयमें दान देना सो तृतीय शिक्षाव्रत है।

धरिऊण वत्थमेत्त परिग्गहं छंडिऊण अवसेसं।
सगिहे जिणालये वा तिविहाहारस्स वोस्सरणं ॥
जं कुणदि गुरुपयासे सम्ममालोइऊण तिविहेण।
सल्लेहण चउत्थ सुत्त सिक्खावय भणिय ॥

अर्थ—वस्त्रमात्र परिग्रहको रखकर अवशेष समस्त परिग्रहका त्यागकर अपने घरमें अथवा जिनालयमें सल्लेखना धारण करे। व्रतफल सिद्धि समाधिमरणसे ही होती है इतना ही नहीं किंतु समाधिमरण आत्मसिद्धिका अंतिम उपाय है, सुगतिका बीज है। समाधि मरण विधि—प्रतीकार रहित मरणके कारण उपस्थित होने पर साम्यभाव और शांतिसे धैर्यपूर्वक, क्रोधादि विकार रहित शरीरका विसर्जन करना सो समाधिमरण है और उसकी सिद्धिके लिये क्रमसे तीन प्रकारके आहारोंका त्याग कर गर्म जल अथवा तक्र (छांछ-मट्ठा) का सेवन करे और अनावश्यकता होनेपर उसका भी त्याग करे। अपनी पर्यायमें किये हुए भले बुरे कर्मोंकी आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करे, पश्चात्ताप करे और सबसे क्रोधादि विकारभावोंकी क्षमा मांगकर शांतिसे णमोकार मंत्रका ध्यान करता हुआ शरीरको छोड़े। यह चौथा सल्लेखना नामका शिक्षाव्रत है। इस प्रकार दूसरी प्रतिमा धारण करनेवाला श्रावक इन बारह व्रतोंको पालन करता है।

तीसरी सामायिक प्रतिमा।

जिणवयणधम्मचेइय परमेट्ठिजिणालयं णणिच्चंति जं
चंदण तिआलें करेइ सामाइय त खु ॥

अर्थ—बाह्य और आभ्यंतर शुद्धिको धारणकर, पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी तरफ मुखकर, एकान्त निर्भय स्थानमें, १२ आवर्तों को करता हुआ ४ प्रणाम (दिशावर्ती चैत्य चैत्यालय मुनि आदिको) चारों दिशामें करे और स्थिर मन वचन कायसे समता पूर्वक सामायिक करे। सामायिकमें कुत्सित ध्यान और चिंतना छोड़ देनी चाहिये। जिनदेव, जिनवचन, जिनधर्म, जिनालय और पंच परमेष्ठीके गुणोंका चिन्तवन, ध्यान, वंदना स्तुति आदि त्रिकाल करना सो सामायिक है। समतासे राग द्वेष और उसके उत्पादक कारणोंका परित्याग करना सो सामायिक प्रतिमा है।

उत्तम मज्झ जहण्णं तिविहं पोसहविहाण मुद्दिट्ठं।
सगसत्तीएमासम्मि चउसु पव्वेसु इकायव्व ॥

अर्थ—प्रोषधोपवास उत्तम मध्यम और जघन्यके भेदसे तीनप्रकार हैं। उत्तम वह है जिसमें धारणा और पारणाके दिवस एकासन पूर्वक उपवास करना, इसमें समस्त प्रकारके आरंभका त्याग कर देना चाहिये। निर्भय होकर निःशल्यता पूर्वक पंच परमेष्ठीका ध्यान धरना चाहिये। मध्यम समस्त हिंसक आरंभको छोड़कर उपवास करनेसे होता है। जघन्य आम्ल अथवा एक अन्नको ग्रहण कर स्वाध्यायादिसे शांति लाभ करता हुआ धर्मसेवन करनेसे होता है। पर्वके दिन प्रोषधोपवास करना चौथी प्रतिमा है।

सज्जी जदि हरियं तयपत्तपवालकंदफलवीयं।
अप्फासुगं च सलिलं सचित्तणिवित्तिमं ठाणं ॥

अर्थ -सचित्त वस्तु-हरित अंकुरपत्र, फल, कंद, बीज और अप्रासुक जलादि सेवन नहीं करना सो पंचम प्रतिमा है।

मण वयण काय कदकारिदाणुमोदेहिं मेहुणं णवधा।
दिवसम्मि जो विवज्जदि गुणम्मि सो सावउ छेट्ठो॥

अर्थ—मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे दिवसमें मैथुन सेवन नहीं करना सो छट्ठी प्रतिमा है।

पुव्वुत्तण विवहाणंपि मेऊण सव्वदा विवज्जतो।
इत्थिकहादि णियत्ती सत्तमया गुण बंभचारी सो॥

अर्थ—नव प्रकारसे स्त्री मात्रका त्याग तथा स्त्री कथादिका भी त्याग करना सो सातमी प्रतिमा है।

जं किं पि गिहा।म व उथोव वा सया विवज्जेदि।
आरंभ णिवित्तमदि सो अट्ठम सावओ भणिओ॥

अर्थ—थोडा वहुत गृह संबंधी आरंभ छोड़ना सो आठमी प्रतिमा है।

मुत्तूण वत्थमेत्त परिग्गहं दंडिऊण अवसेसं।
तथवि मुच्छण करेदि जाणिसो सावओ णवमो॥

अर्थ—वस्त्र मात्रको रखकर अवशेष परिग्रहका त्याग करना सो नवमी प्रतिमा है।

पुठोवा पुच्छे वा णिय गेहि परेहि सगिहकज्जे।
अणुमणणं जोणकरेदि वियाण सो सावओ दसमो॥

अर्थ—जो अपने अथवा अन्यके गृहकार्य संबंधी आरंभमें अनुमति नहीं देता है, सो दसमी प्रतिमा धारक है।

एयारसम्मि ठाणे उक्किठो सावओ हवई दुविहो।
वत्थेक धरो पढमो कोवाण परिग्गहो विदिओ॥

अर्थ—उत्कृष्ट श्रावकके क्षुल्लक ऐल्लक ऐसे दो भेद हैं। प्रथम वस्त्रका रखनेवाला और दूसरा कौपीन मात्र रखनेवाला है।

तव वय नियमावासय लोचं कारेदि पिच्छगिण्हेदि।
अणुवेहा धम्मझाण करपत्ते एक ठाणम्मि॥

अर्थ--उभय प्रकारके उत्कृष्ट श्रावक तप, व्रत, नियम, संयम ध्यान, प्रथमकी समस्त प्रतिमाऐं सदाचार नियमसे पालन करता है। निर्दोष आहार एक समय पाणिपात्रमें लेता है सो कषायोंका विजयी एकादश प्रतिमा धारक है।

इस प्रकार संक्षेपसे पाक्षिक नैष्ठिक श्रावकका सदाचार है। इस सदाचारके पालन करनेसे उभयलोककी सिद्धि होती है। इतना ही नहीं किन्तु यह सदाचार नीतिमय होनेसे राजभयादि रहित पूर्ण सुखका सत्यमार्ग है।

इच्छमे जो कोइ दिवसिओ अइयारो अणायारो तस्स भंते पडिक्कामामि पडिक्कमंत तस्स मे सम्मतमरण समाहिमरणं पंडितमरणं वीरियमरणं दुक्खक्खउ कम्मखउ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झ।

अर्थ--इस प्रकार उक्त व्रतोंमे मुझसे दिवस संबधी अतीचार लगे हों उसका प्रतिक्रमण करता हूं। इससे यह भी चाहता हूं कि सामाधिमरण आदि उत्तम गुण प्राप्त हों।

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्तेय ।
चभारंभ परिग्ग ह अणुमण उद्दिट्ट देस विरदोय ॥

एयासु यथा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइ चार सोहणट्ठं छेदोवट्ठाणं अरहंत सिद्ध आयरीय उव-ज्झाय सव्वसाहु सक्खियं सम्मत पुव्वग सुव्वद दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु ।

अथ देवसिय पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वायरियकमेण पडिक्कमण भत्ति कायोत्सर्गं करोमि

(णमोकार मंत्रको जाप्य ६ बार)

इस प्रकार कायोत्सर्ग (णमोकार मंत्रको जाप्य ६ वार) देकर पुनः 'णमो अरहंताणं' यहांसे प्रारंभकर 'यावंति जिन-चैत्यानि' इस श्लोक पर्यन्त मूल पाठ पढ़कर पुनः कायोत्सर्ग धारण करे ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं. णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

णमो जिणाणं ३ णमो णिसीहीए ३ णमोत्थुए मम मंगल अरहंत सिद्ध बुद्ध णिरय णिम्मल सममण सुसमण सुसमत्थ समजोगसमभाव सल्लघट्टाणं २ णिब्भय णिराय णिद्दोस णिम्मोह णिम्मम णिस्संग णिसल्लमाणमायमोस-मूरणे तवपहावण गुणरयण सीलसायर अणंत अप्पमेय महदि महावीर वड्ढमाण बुद्धिरिसिवेदि ।

णमो थुदे ३ मम मंगल अरहताय सिद्धाय बुद्धाय जिणाय, केवलिणो ओहिणाणिणो मणपज्जवणाणिणो चउदसपुव्वगामिणो सुदसमिदिसमिद्धाय तवोय बारस विहो तवसी गुणाय गुणवंतोय महारिसि तित्थ तित्थकराय पवयणं पवयणीयं णाणं णाणीय दंसणं दंसणीयं सजमो सजदाय विणओ विणीयाय बंभचेरवासो बभचारीय गुत्तीओचेव गुत्तिमंतोय मुत्तियोचेव मुत्तिमतोय समिदीउचेव समिदियं तोय सुसमय परममय परसमय विदुखंति खवगाय खंतिमंतोय खीणमोहाय खीणवंतोय बोहिय बुद्धाय बुद्धिमतोय चेयरूक्खाय चेइयाणि उड्ढमहतिरियलोए सिद्धायदणाणि णमसामि सिद्धणिसीही याउ अट्ठावय पव्वदे सम्मदे णिज्जंते चंपाएं पावाए मज्झिमाए इत्थिवालियम्सहाये जाउ अणाउ काउदि सिद्ध णिसिहीयाउ जीवलोयम्मि इसिपव्व भरतलगयाणं सिद्धाणं बुद्धाण कम्मचक्कमुक्काण णीरयाणं णिम्मलाणं गुरु आइरिय उवज्झायाणं पुव्वतित्थेर कुलयशणं चाउवणोय सवण संघोय भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु जंलोए सति साहुओ सजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं एदेहं मंगलं करेमि भावदो विशुद्धोसिरसा अहिवंदिऊण सिद्धेकाऊणं अजलि मच्छयमि पडिलेहिय अठकत्तरिउ तिविहं तियरयण सुद्धोत्थ ॥

अर्थ—हे जिनराज ! आपके लिये नमस्कार है। स्तुत्य-वंदनीय, मंगलमय अरहंत भगवान् मेरा मगल (कल्याण) कीजिये।

हे महावीर! आपका स्तवन करता हूं। आप राग, द्वेष मोह, ममत्व-परिग्रह, शल्य, (माया मिथ्या निदान) और कषाय रहित हो। आपने साम्यभाव धारणकर समस्त कर्मोंका नाश किया है। शुभ भावोंको धारणकर निर्भय हो गये हो। आपके तप ही प्रधान योग है, इसलिये आप गुण-रत्न हो, शीलके सागर हो, अप्रमेय हो, महान् हो, मुनि महर्षि और ज्ञानीजनोंसे पूज्यलोक शिरोमणि सर्वज्ञ हो। कर्ममल रहित सिद्ध हो (भविष्यमें) शुद्ध हो, अनंतगुणोंके पुंज हो, प्रभो! मुझे मंगल करो।

केवली, अरहंत, तीर्थंकर, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, श्रुत-केवली, शास्त्रज्ञानी, पवित्रतप और तपके धारक यतीश्वर गुणी (ऋद्धि धारी मुनीश्वरको गुणी कहते हैं) गुणवान्, महर्षि, सिद्धान्त, सिद्धांतज्ञानी, ज्ञानी सम्यग्दृष्टि, संयमी विनय करने योग्य, ब्रह्मचारी, गुप्तिधारक, समिति पालक, स्वसमयके ज्ञाता, क्षीणमोह ज्ञानी, ऋषि, महर्षि और ऋद्धिधारक, मुनीश्वर मेरा कल्याण करो।

तीन लोकमें जितनी जिनप्रतिमा, जिन चैत्यालय, सिद्धक्षेत्र और तीर्थक्षेत्र हैं उनको मैं नमस्कार करता हूं। अष्टापद, सम्मेदाचल गिरनार, चंपापुर, पावापुर, हस्तनापुर आदि तीर्थोंसे और विदेह क्षेत्र तथा समस्त कर्मभूमिसे जितने जीव कर्ममल रहित सिद्ध बुद्ध, और निर्मल हो गये हैं वे चारों प्रकारके संघको मंगल करो, पवित्र करो, शांति करो। विशुद्ध भावनासे मैं अष्टांग (हाथ पैर

मस्तक और छाती) नमस्कार करता हूं। मेरे कर्मों का नाश करो।

नोट—मूल प्रतिक्रमण पाठमें अष्ट मूलगुणोंका पडिक्कमण नहीं लिखा है। पाक्षिक श्रावकके मूलगुणोंमें अतीचार अनाचार अवश्य ही लगते हैं। अतएव पाक्षिकोंको नीचे लिखा पाठ प्रतिक्रमण करते समय अवश्य ही पढना चाहिये।

(१) हे भगवान्! मैंने मूलगुणोंको पालन करते समय मद्य (दारु)के त्यागमें अचार (अथाणा), चलित दही, छाछ, कांजी और आसवों (अर्क)का सेवन किया कराया और सेवन करनेकी अनुमति दी इस संबंधी अतीचार अनाचार जो मुझसे दिवस संबंधी लगा हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(२) हे भगवान्! मैंने मूलगुणोंका दूसरा भेद मांस त्याग व्रतमें चाममें रखा हुआ घी, तेल, पानी सेवन किया हो, सड़ा हुआ अन्न, चलित आटा, आदि पदार्थ हींग (चाममें रखकर आती है) तथा मांस मिश्रित औषधी सेवन की हो उस संबंधी अतीचार अनाचार मुझसे हुआ हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(३) हे भगवान्! मैंने मूलगुणोंका तीसरा भेद मधु त्यागमें हरे (गीले) फूल (ऐसे फूल जिनमें मिठासके लिये बहुतसे त्रस जीव आकर निवास करते हों) आदि सेवन किये हों इत्यादि। तत्सम्बन्धी मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(४) हे भगवान्! पंचोदुंबर त्यागमें अज्ञात फल, चलित फल, बिना शोधे देखे कच्ची फली, तथा क्षुद्रफल, (जिसमें हिंसा,

इस प्रकार सात व्यसनोंमें जो जो दोष लगाये हों उनका भी विचारकर आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करे।

अधिक हो और फल अल्प हो जैसे-बेर) आदि सेवन किये हों तत्सम्बन्धी अतीचार इत्यादिका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(५) हे भगवान! मैं मूलगुणका पाचवां रात्रिभोजन नामक गुणके पालन करनेमें दो घड़ी (सूर्योदयास्त) के अनंतर पदार्थोंका सेवन किया हो. अथवा औषधि निमित्त बनाकर रसादि सेवन किये हों तत्सम्बन्धी अतीचार मुझसे लगा हो उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

(६) हे भगवान! मैंने मूलगुणका छट्ठा भेद जलगालन नामक गुणके पालन करनेमें दो मुहूर्त व्यतीत हो जानेपर भी विना छने (गले) पानीका उपयोग किया, जीवाणी (बिनछन) जहांसे पानी लाया गया वहां पर नहीं पहुंचाया, मलिन और सछिद्र वस्त्रसे जल छाना, जीवाणी (बिनछन) का विचार नहीं किया तत्सम्बन्धी अतीचार इत्यादि, उसका मैं प्रतिक्रमण करता हू

(७) हे भगवान। मैंने मूलगुणका सातवां भेद जिनदर्शनके पालन करनेमें प्रमाद किया, अविनयसे कार्य किया, मन, वचन और कायकी शुद्धि नहीं रखी इत्यादि अतीचार अनाचार मुझसे लगे हों उसका मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

हे भगवान! मैंने मूलगुणका आठवां भेद जीवदयाके पालन करनेमें प्रमाद और अज्ञान रखा, विना प्रयोजन जीवोंको सताया, अंगोपाग छेदे इत्यादि अतीचार मुझसे लगा हो तत्सम्बन्धी मैं प्रतिक्रमण करता हूं।

पडिक्कमामि भंते दंसण पडिमाए संकाए कंखाए विदिगिच्छाए परपासंडपसंसणाए पसंथूए जो मए देवसिओ अइचारो अणाचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

हे भगवान्! कृतकर्मोंका पश्चात्ताप पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूं। दर्शन प्रतिमाके पालन करनेमें, जिनमार्गमें शंका की हो, शुभाचरण पालनकर संसार सुखकी आकांक्षा (निदान) की हो, धर्मात्माओंके मलिन शरीरको देखकर ग्लानि की हो, मिथ्यामार्ग और उसके सेवनेवालोंकी प्रशंसा की हो, इत्यादि जो मैंने दिवस सम्बन्धी अतीचार मन वचन कायसे किये हों, कराये हों, अन्यके करनेमें अनुमति प्रदान की हो तत्सम्बन्धी समस्त कार्योंकी आलोचना करता हूं, पश्चात्ताप करता हूं और वे कर्म निरर्थक हों, ऐसी इच्छा करता हूं।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए पढमे थूलयडे हिंसाविरदिवदे वहेण वा बंधेण वा, छएण वा अइभारारोपणेण वा, अणपाणणिरोहेण वा जो मए देवसिउ अइचारो अणाचारो मणसा, वचिया, काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

अर्थ—हे भगवान्! मैं अपने कृतकर्मोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी व्रत प्रतिमाके अंतर्गत प्रथम अहिंसाणुव्रतके पालन करनेमें जीवोंको बांधे

हों; मारे हों, अंगोपांग छेदे हों, शक्तिसे अधिक बोझ लादा हो और अन्न पानका निरोध किया हो, इत्यादि अनेक अतीचार अनाचार दिवस संबंधी मुझसे मन, वचन, काय और कृत, कारित अनुमोदनसे लगे हों वे निरर्थक हों ऐसी मेरी भावना है।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए विदिये थूलयडे असच्चविरदिवदे मिच्छोपदेसेण वा रहे अब्भक्खाणेण वा कूडलेह करणेण वा णासावहारेण वा सायारमतभेएण वा जो मए देवसिउ अइचारो अणाचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

हे भगवान्! अपने कृत कर्मोंको आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी प्रतिमाके अंतर्गत स्थूल सत्यव्रतमें मिथ्या उपदेश देनेसे, एकांतमें कही हुई बातको प्रकट कर देनेसे, झूठा लेख लिखनेसे, धरोहर हरण करनेसे, किसीके इंगित चेष्टासे अभिप्राय समझकर भेद प्रगट कर देनेसे इत्यादि अनेक प्रकार अतीचार अनाचार मन वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे हुये हों वे निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए तिदिये थूलयडे थेणविरदिवदे थेणपओगेण वा, थेणहरियादाणेण वा, विरुद्धरज्जाइक्कमणेण वा, हीणाहियमाणुमाणेण वा पडिरूवय ववहारेण वा जो मए देवसिउ अइचारो

अणाचारो मणसा वचिया कायेण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ- हे भगवन्! मैं अपने कृत कर्मोंको आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी प्रतिमाके अंतर्गत स्थूल अचौर्याणुव्रतके पालन करनेमें दिवस संबंधी मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे चोरीका प्रयोग वतलाया हो (स्वयं तो चोरी न की हो परन्तु दूसरोंको ऐसा व्यापार वतलाना जिससे वह चोरी करे) चोरसे अपहरण की हुई द्रव्य ग्रहण की हो, राज्यके विरुद्ध कार्य किया हो (वस्तुओंका कर चुराया हो, रेलकी टिकिट आदिमें चोरी की हो, राजाकी आज्ञा भंग की हो) तोलनेके वांट कमती वढ़ती रखे हों और अधिक कीमती वस्तुमें अल्प कीमती मिलाकर वदले दी हों, इस प्रकार अनेक दोष किये हों वे सव निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए चउथे थूलपडे अबंभविरदिव्वदे परविवाहकरणेण वा इत्तरियागमणेण वा परिग्गहिदा परिग्गहिदागमणेण वा अणंगकीडणेण वा कामत्तिव्वाभिणिवेसेण वा जो मए देवसिउ अइचारो अणाचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ-हे भगवान्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुये दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी व्रत प्रतिमाके अंतर्गत स्थूल ब्रह्मचर्याणुव्रतके पालन करनेमें

दिवससंबंधी मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे अन्यके पुत्र पुत्रियोंका विवाह (कन्यादानके करनेमें महान् धर्म होता है ऐसा अन्य धर्मवाले मानते हैं) किया हो, व्यभिचारिणी स्त्रीके घरके साथ व्यवहार आना जाना आदि रखा हो, वेश्या कुमारिका और विधवा इत्यादिक परिग्रहीत और अपरिग्रहीत स्त्रियोंके साथ कामवासनासे व्यवहार (बोलना हंसना आदि) किया हो, काम सेवनके अंग सिवाय अन्य अंगसे काम चेष्टा की हो, कामके तीव्र विकारसे बीभत्स विचारा हो इत्यादि अनेक प्रकारके दोष दिवस संवन्धी मुझसे बने हों दूसरेसे कराये हों, अन्यके करनेमें हर्ष माना हो सो सब मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए पचमे थूलयडे परिग्गहपरिमाणवदे खेत्तवत्थूण परिमाणाइक्कमणेण वा धणधण्णाणं परिमाणाइक्कमणेण वा हिरण्णसुवण्णाणं परिमाणाइक्कमणेण वा दासीदासाणं परिमाणाइक्कमणेण कुप्यपरिमाणाइक्कमणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ—हे भगवान्! मैं अपने व्रतोंमे लगे हुए दोषोंको आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी प्रतिमाके अन्तर्गत स्थूल परिग्रह त्यागव्रतमें जमीन (क्षेत्र) घर, गाय बैल प्रभृति धन और गेहूं आदि धान्य, सुवर्ण, चांदी,

दासी, दास, वस्त्र, और भांड (वर्तनादि) इत्यादि समस्त परिग्रहके परिमाणका मैंने मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे उल्लंघन किया हो, अन्यसे कराया हो, अन्यके करनेमें अनुमति दी हो तो, उस सबन्धी समस्त दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए पढमे गुणव्वदे उड्ढवईक्कमणेण वा अहोवईक्कमणेण वा, तिरियवईक्कमणेण वा खेत्तवड्ढिएण वा सदि अंतराधाणेण वा जो मए देवसिव अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥

अर्थ-हे भगवान्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। मैंने व्रतप्रतिमाके अन्तर्गत गुणव्रतका प्रथम भेद दिग्व्रत नामक व्रतके पालन करनेमें ऊर्ध्वदिशाका अतिक्रमण किया हो, नीचेकी दिशाका अतिक्रमण किया हो, तिर्यग्दिशाका अतिक्रमण किया हो, क्षेत्रकी मर्यादा बढाई हो अथवा मर्यादाका विस्मरण किया हो इत्यादि अनेक प्रकारके दोष दिवस सम्बन्धी मैंने किये हों, अन्यके करनेमें अनुमति दी हो तो वे सब मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वद पडिमाए विदिए गुणव्वदे आणयाणेण वा विणिजोगेण वा सद्दाणुवाएण वा रूवाणुवाएण वा पुग्गलखेवेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ-हे भगवन् ! मैं अपने व्रतमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। दूसरी प्रतिमाके अंतर्गत गुणव्रतका दूसरा भेद देशव्रतके पालन करनेमें, मर्यादा किये हुए क्षेत्रके बाहरसे वस्तु मगाई (किसी प्रयोजनसे कहींपर गमन होता है मर्यादाके बाहर यदि किसी वस्तुको लानेका हमारा अभिप्राय है और वह वस्तु स्वयं न जाकर अन्यसे मगवाई तो मर्यादाके बाहर जानेका प्रयोजन सिद्ध हुआ परंतु प्रत्यक्ष व्रत भंगके भयसे स्वयं गमन नहीं किया इसलिये यह भंगाभंगवृत्तिरूप अतीचार है) हो। मर्यादाके बाहर वस्तु भजी हो, कंकर पत्थर फेंककर अन्य मनुष्यसे मर्यादाके बाहरका कार्य किया हो, शब्द आदिकी समस्या दिखलाकर कार्य किया हो, अपना रूप दिखलाकर मर्यादासे बाह्यका कार्य सिद्ध किया हो इत्यादि अनेक दोष मन वचन कायसे दिवसमें मैंने किये हों, अन्यसे कराये हों अथवा अन्यके करनेमें अनुमति प्रदान की हो तो वे सब मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए तिदिए गुणव्वदे कंदप्पेण वा कुक्कुचिएण मोक्खरिएण वा असमक्खिया-हिकरणेण वा भोगोपभोगाणत्थकेण जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ-हे भगवन्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुये दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं।

दूसरी व्रत प्रतिमाके अंतर्गत गुणव्रतका तीसरा भेद अनर्थदण्ड-विरति व्रतमे रागके उदयसे स्मित हास्यसे थट्टा की हो, कुत्सित भाषण किया हो, शरीरकी खोटी चेष्टा की हो, विना प्रयोजन वकवाद किया हो, व्यर्थके कार्य किये हों (प्रयोजन विना हिंसा-जनक व्यापार किया हो) भोगोपभोगकी सामग्री अपेक्षासे वहुत ही अधिक निष्काम संग्रह की हो। इत्यादि अनेक प्रकारके दोष मन वचन कायसे दिवसमें मैंने किये हों अन्यसे कराये हों अथवा किसीके करनेपर हर्ष प्रकाशित किया हो तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए पढमे सिक्खावदे फासिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा घाणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा चक्खिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेग वा सवणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ — हे भगवन्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुये दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। व्रत प्रतिमाके अंतर्गत प्रथम शिक्षाव्रत भोगपरिमाण व्रतमें स्पर्शन इंद्रिय (चर्म–इसका गर्म, शीत, हलका, भारी, रूक्ष, स्निग्ध, कोमल, कठिन) विषय है और इस विषय संबंधी भोग–(जो एकवार भोगनेमें आवे ऐसे पदार्थों के परिमाणमें) रसना इन्द्रिय (जीभ

इसका मिष्ट, कटु, तिक्त, कषायला और खट्टा विषय है इस विषय सम्बन्धी भोग पदार्थों के परिमाणमें) घ्राणेन्द्रिय (नाक-इसका विषय सुगंध तथा दुर्गंध इस विषय सम्बन्धी भोग पदार्थों के परिमाणमें) चक्षुरिन्द्रिय (आंख-इसका काला पीला नीला लाल सफेद पदार्थ, इस विषय संबंधी भोग पदार्थों के परिमाण) श्रोत्रेन्द्रिय (कान-उसका विषय आवाजका ज्ञान, इस विषय सम्बन्धी भोग पदार्थों के परिमाण) इस प्रकार पांच इन्द्रियोंके विषय सम्बन्धी भोग पदार्थोंके परिमाणका अतिक्रमण मन वचन काय द्वारा दिवसमें स्वयं किया हो, अन्यसे कराया हो, किसीके करनेमें भला माना हो इत्यादि दोष मैंने किये हों तो वे सब मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए विदियसिक्खावदे फासिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा रसणिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा घाणिंदिय परिभोग-परिमाणाइक्कमणेण वा चक्खिंदिय परिभोगपरिमाणाइ-क्कमणेण वा सवणिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंका आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूं। व्रत प्रतिमाके अंतर्गत शिक्षाव्रतका तीसरा भेद उपभोग (जो बार बार भोगनेमें आवे)

परिमाण व्रतमें स्पर्शनेन्द्रिय उपभोग परिमाण, रसनेन्द्रिय उपभोग परिमाण, घ्राणेन्द्रिय उपभोग परिमाण, चक्षुरिन्द्रिय उपभोग परिमाण और श्रोतेन्द्रिय उपभोग परिमाण इस प्रकार पाचों इन्द्रिय उपभोग सम्बन्धी पदार्थोंका अतिक्रमण मन वचन कायसे किया हो, कराया हो, कर देनेको भला माना हो इत्यादि अनेक दोष दिवसमें मुझसे बने हों तो वे सब मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए तिदिए सिक्खावदे सचित्तणिक्खेवेण वा सचित्तपिहाणेण वा परउवएसेण वा कालाइक्कमणेण वा मच्छरिएण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ-हे भगवन् ! मैं अपने लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। व्रत प्रतिमा के अंतर्गत शिक्षाव्रतका तीसरा भेद अतिथिसंविभाग नामक व्रतमें सचित्त-(जीवयोनि जीवोत्पत्ति होनेका स्थान) वस्तुमें प्रासुक अचित्त पदार्थको रखा हो, सचित्त वस्तुसे ढका हो, अन्य किसीके प्रतिपादित करनेसे दिया अथवा अन्यका द्रव्य अपना द्रव्य कहकर दिया हो, दान देनेमें समयका विच्छेद (लोभ और कलुषित परिणामोंके कारण यह भावना करी हो कि यह समय व्यापारादिका है इसलिये कौन इस समय आहारादि दान देने जाता है) किया हो, दान देनेमें अन्य भव्यात्माओंके साथ द्वेष (प्रतिष्ठादिके कारण अर्थात जो अन्य कोई

धर्मात्मा दान करे तो उसके साथ यह विचार कर द्वेष करे कि इसकी प्रतिष्ठा सर्वत्र होगी और मैं बड़ा अमीर होकर चुप रह गया इसलिये मेरी निंदा होगी इसलिये द्वेष) किया हो इत्यादि अनेक प्रकारके दोष, मन, वचन, कायसे दिवसमें मैंने स्वयं किये हों, अन्यसे कराये हों, किसीके करनेमें संमति प्रदान की हो तो वे सब दोष निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते वदपडिमाए चउत्थे सिक्खावदे जीविदासंसणेग वा मरणासंसणेण वा मित्ताणुराएण वा सुहाणुबंधेण वा णिदाणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थ-हे भगवन्! मैं अपने व्रतमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। व्रत प्रतिमाके अंतर्गत शिक्षाव्रतका चौथा भेद समाधिमरण व्रत पालन करनेमें जीवित रहनेकी (मैं अभी अधिक जीवित रहा तो अच्छा है अथवा जीनेकी आशासे समाधिमरणमें शिथिलता करना) आशा रखना, मरणका भय करना, हाय! मैं मरजाऊंगा क्या? ऐसे परिणामोंसे संक्लेशित होना अथवा शीघ्रतासे मरण होनेकी इच्छा रखना, इष्ट मित्रजनोंसे प्रेम (राग) करना, पूर्वमें भोगे हुए भोगोंका स्मरण करना और व्रतादिक पालन कर सांसारिक सुखकी इच्छा करना इत्यादिक अनेक दोष दिवसमें मैंने मन

वचन कायसे किये हों, अन्यसे कराये हों, किसीके करनेमें अनुमति प्रदान की हो तो वे सब दोष निरर्थक हों।

पडिक्कमामि भंते सामाइयपडिमाए मणदुप्पणिधाणेण वा वाकदुप्पणिधाणेण वा, कायदुप्पणिधाणेण वा अणादरेण वा सदिअणुवट्ठाणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ—हे भगवन्! में अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करनेका इच्छुक हूं। तीसरी सामायिक प्रतिमाके पालन करनेमें मनकी स्थिरता न रखी (आर्त्त और रौद्रध्यान पूर्वक मनको अन्य प्रकार चलायमान किया) वचनकी स्थिरता (सामायिक पाठका शुद्ध उच्चारण न कर बकवाद आदि करनेसे वचनकी दुष्टता धारण की) न रखी, शरीरकी स्थिरता (एक आसनसे स्वस्थता पूर्वक निर्विकार सामायिक नही किया किन्तु शरीरकी दुष्टतासे आंगोपांगको इधर उधर चलायमान किया) नहीं रखी, सामायिक करनेमें अनादर प्रकट किया अथवा सामायिकके पाठका विस्मरण किया इत्यादि अनेक प्रकारके दोष दिवसमें मैंने मन वचन कायसे किये हों, अन्यसे कराये हों, किसी अन्यके करनेमें अनुमति प्रदान की हो तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते पोसहपडिमाए अप्पडिवेक्खिया-पमज्जियासग्गेण वा अप्पडिवेक्खियापमज्जिदाणेण वा

अप्पडिवेक्खियापमज्जियासंथारोवक्कमणेण वा आवस्सयाणदरेण वा सदिअणुव्वट्ठाणेण वा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ-हे भगवन्! अपने व्रतोंमे लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। चौथी प्रोषधोपवास नामक प्रतिमाके पालन करनेमें दृष्टिसे जीवजंतुओंको न देखकर और प्रमादसे जीवजंतुओंका शोधन किये विना मल मूत्रका क्षेपण किया हो अथवा पूजाके उपकरण आदि वस्तुयें विना देखे विना शोधे ऐसे ही जीवजंतुवाली जमीनमें रखी हों। विना देखे और विना सोधे उपकरण पुस्तक आदि संयमोपयोगी वस्तुओंको ग्रहण किया हो, विना देखे विना शोधे विस्तर (पथारी) आदि विछाये हों, पट् आवश्यक पालन करनेमें अनादर किया हो, अथवा सामायिक, पूजन, स्तवन आदिका

---

१ गृहस्थोंके लिये पट् आवश्यक दोनों प्रकारके पालन करने चाहिये। समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय और कायोत्सर्ग इनको आवश्यक कहते हैं। अथवा देवपूजा, गुरुकी उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये भी छह आवश्यक हैं। दोनों प्रकारके आवश्यकोंका अभिप्राय परिणामको सरल और पवित्र रखनेका है इसलिये आवश्यक कर्ममें अनादर करना व्रतमें शिथिलता है।

पाठ विस्मरण किया हो इत्यादि अनेक दोष दिवसमें मैंने मन वचन कायसे स्वयं किये हों, अन्यसे कराये हों, अन्य किसीके करनेमें अनुमति प्रदान की हो तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते सचित्तवि'दि पडिनाए पुढविका-इआ जीवा संखेज्जासंखेज्जा आउकाइआ जीवा संखेज्जा-संखेज्जा तेउकाइआ जीवा संखेज्जासंखेज्जा वाउ काइआ जीवा संखेज्जासंखेज्जा वणप्फदिकाइआ जीवा अणंता-णंता हरिया विया अंकुरा छिण्णाभिण्णा एदेसिं उद्दावणं परिदावण विराहणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करनेका इच्छुक हूं। पांचवीं सचित्तत्याग प्रतिमाके पालन करनेमें जलकायके संख्यात अथवा असंख्यात जीव, तेजकायके संख्यात असंख्यात जीव, वायुकायके संख्यात असंख्यातजीव, पृथ्वीकायके संख्यात असंख्यात जीव और वनस्पतिकायके अनंतानंत जीव, हरितकायके जीव, हरित अंकुर, बीज कंदमूल आदिके जीव और साधारण वनस्पतिके जीवोंका छेदन किया हो, भेदन किया हो, प्राणोंका घात किया हो, पांव (पग) आदिसे कुचल दिये हों, त्रास दिया हो, पीडा करी हो और उनकी विराधना की हो इत्यादि अनेक दोष मैंने मन वचन कायसे स्वयं किये हों, अन्यसे

कराये हों, किसी अन्यके करनेमें सहमत हुआ हो तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते राइभत्तपडिमाए णव विह-बंभचरियस्स दिवा जो मए देवसिउ अइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं॥

अर्थ—हे भगवन्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंको आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करनेकी इच्छा करता हूं। छठी दिवा-मैथुन त्याग नामक प्रतिमाके पालन करनेमें नव प्रकार-स्त्रियोंके विषयकी अभिलाषा, लिंग विकार, घृत दुग्धादि पुष्टरस त्याग, स्त्री, पशु, नपुंसक, विट और सम विषयोंके लोलुप मनुष्योंके आश्रित वस्तिका त्याग, स्त्रियोंके मनोहर अंग निरीक्षण त्याग, स्त्रियोंकी बुरी वासना आदर सत्कारका त्याग, अपनी पूजा प्रतिष्ठाके श्रवणका त्याग, अंग शृंगारकात्याग संगीत नृत्य वादित्र आदिका श्रवण किया हो इत्यादि अनेक दोष दिवसमें मैंने मन वचन कायसे स्वयं किये हों, अन्यसे कराये हों किसी अन्यके करनेमें भला माना हो तो वे सब दोष मिथ्या हों।

१—इस प्रतिमाका नाम रात्रिभुक्त त्याग भी है इसलिये चारों प्रकारके आहारमें मोह किया हो, पूर्वमें भोग हुए रसोंका स्मरण किया हो, निदान किया हो और रसोंको न भोगते हुए भी मैं रसभोग रहा हूं ऐसा स्मरण किया हो इत्यादि दोष मैंने स्वयं किया हो अन्यसे कराया हो, किसीके करनेपर संमति दी हो तो वे सब मिथ्या हों।

पडिकमामि भंते इत्थिकहायत्तणेण वा इत्थिमणोहहरांग निरिक्खिणेण वा पुव्वरयाणुस्सरणेण वा मुक्कोपणरसा सेवणेण वा सरीरमंडणेण वा जो मए देवसिउ आइचारो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥

अर्थ-हे भगवान्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंको आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। सातवी ब्रह्मचर्य प्रतिमाके पालन करनेमें स्त्रियोंके मनोहर अंगोंका निरीक्षण किया हो, पूर्वकालमें भोगे हुए विषयोंका स्मरण कर मनको विकारित किया हो, कामोत्पादक पुष्ट रसोंका सेवन किया हो, स्त्रियोंको आसक्त करनेवाला शरीरका शृङ्गार किया हो इत्यादि अनेक प्रकारका दोष मैंने दिवसमें मन, वचन, काय से किया हो, अन्यसे कराया हो, किसी अन्यके करनेमें सम्मति प्रदान की हो तो वे सब दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते आरंभविरदि पडिमाए कसायवसंगएण जो मए देवसिउ आरंभो मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ-हे भगवान्! मैं अपने व्रतोमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। आठमी आरंभत्याग प्रतिमाके पालन करनेमें क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह आदि कषायोंके वश पापकर्मों का आरंभ दिवसमें मैंने

मन, वचन कायसे किया हो, अन्यसे कराया हो; अन्य किसके करनेमें अनुमति प्रदान की हो तो वे सब दोष मेरे मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते परिग्गहविरदिपडिमाए वत्थमेत्त परिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामो जो मए देवसिउ अइचारो मणासा वचिया काएणा कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ—हे भगवान् ! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। नवमीं परिग्रहत्याग प्रतिमा के पालन करनेमें वस्त्र मात्र परिग्रह सिवाय अन्य परिग्रहमें मूर्च्छा की हो तो उस सम्बन्धी दिवसमें मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे किये हुए दोषों को मिथ्या चाहता हूं।

पडिक्कमामि भंते अणुमणविरदिपडिमाए जं किंपि अणुमणण पुट्ठापुट्ठेण कदं वा कारिदं वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ—हे भगवान् ! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक प्रतिक्रमण करता हूं। दशमी अनुमति विरति प्रतिमाके पालन करनेमें अन्यके पूछनेपर अथवा विना पूछनेपर भी जो कुछ अनुमति दी हो तत्सम्बन्धी मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदनासे दिवसमें किये हुए समस्त दोष मिथ्या हों।

पडिक्कमामि भंते उद्दिट्ठविरदिपडिमाए उद्दिट्ठदोस-

बहुलं आहारियं वा आहाराविंयं वा आहारिज्जंतं समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥

अर्थ—हे भगवान्! मैं अपने व्रतोंमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना पूर्वक पश्चात्ताप करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूं। ग्यारहवीं उद्दिष्टत्याग प्रतिमाके पालन करनेमें उद्दिष्ट दोषसे दूषित आहार स्वयं सेवन किया हो, अन्यको उद्दिष्ट दोष सहित आहार कराया हो, उद्दिष्ट दोष दूषित आहारके करनेमें संमति प्रदान की हो तत् सम्बन्धी जो दोष मन वचन कायसे मुझसे हुए हों वे सब मिथ्या हों।

निर्ग्रन्थ पदकी वांछा।

इच्छामि भंते इमं णिग्गंथं पावयणं अणुत्तरं केवलियं णेग्गइयं सामाइयं संसुद्धं सल्लघत्ताणं सिद्धिमग्गं सेढिमग्गं खंतिमग्गं मोत्तिमग्गं मोक्खमग्गं पमोक्खमग्गं णिज्जाणमग्गं णिव्वाणमग्गं सव्वदुःखपरिहाणिमग्गं सुचरियपरिणिव्वाणमग्गं अविहत्तमविसंति पव्वयणमुत्तमं त सद्दहामि तं पत्तियामि तं रोचेमि तं फासेमि इदो उत्तरं अण्णं णत्थि ण भूदं ण भवं भविस्सदि णाणेण वा दंसणेण वा चरित्तेण वा सुत्तेण वा इदो जीवा सिज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुःखाणमंतं करंति परिवियाणंति समणोमि संजदोमि उवरदोमि उवसंतोमि उवधिणि पडिमाणमायामोसमूरण मिच्छणाण मिच्छदंसण

मिच्छरितं च पडिविरदोमि समण्णाण सम्मदंसणसमच्चरित्तं च रोचेमि जं जिणवरेहिं पणत्तो इत्थ मे जो कोई देवसिउ राईउ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छामि दुक्कड ॥

अर्थ—हे भगवान्! मैं निर्गन्थपदकी इच्छा करता हूं। जबतक मेरा संसारसे संबन्ध है तबतक भव भवमें यह त्रिजगत्-पूज्य और मंगललोकोत्तमशरणभूत निर्गन्थपद (समस्त परिग्रहादि रहित परम दिगंबर अवस्था) वारवार मिलो।

बाह्य और आभ्यंतर समस्त परिग्रह रहित, अनुत्तर—(मोक्ष-मार्गका साक्षात् चिन्ह निर्गन्थ लिंग सिवाय अन्य किसी भी लिंगसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती है इसलिये निर्ग्रन्थपद लोकोत्तर है) केवलज्ञानका उत्पादक, रत्नत्रयका बीज, सर्व सावद्य रहित, परम उदासीनताका कारणभूत, आलोचना प्रायश्चित्त निरतीचारता प्रतिक्रमण आदि गुणोंसे परम विशुद्ध, माया मिथ्या निदान इस प्रकार शल्यत्रय रहित, आत्मसिद्धिका प्रधान मार्ग उपशमक्षयोपशमादि श्रेणियोंका साक्षात् मार्ग, परिग्रह क्रोध मान माया लोभ काम और व्यामोहादि समस्त विकार रहित होनेसे सर्वोत्तम निर्भय परमात्म प्राप्तिका प्रत्यक्ष मार्ग, त्यागका मार्ग, मोक्षमार्ग, उत्कृष्टपदका मार्ग, संसारके परिभ्रमणसे रहित निर्दोष मार्ग, निर्वाणका मार्ग, सर्वदुःखोंके नाश करनेका मार्ग, उत्तम सदाचारके उत्पन्न करनेका मार्ग, अवाधित मार्ग, स्वतन्त्रताका मार्ग, निर्भयताका मार्ग, सब सुखोंका मार्ग और सर्वोत्कृष्ट मार्ग ऐसा निर्ग्रन्थ पद है।

मैं उक्त सर्वोत्कृष्ट निर्ग्रन्थपदको विशुद्धभावोंसे श्रद्धान करता हूं और संशयादि समस्त विकार रहित शुद्ध निश्चयसे चाहता हूं, विशुद्ध भावोंसे निश्चयरूप मानता हूं, विश्वास करता हूं, सहृदयसे स्वीकार करता हूं, अनन्य भावनासे प्रेम करता हूं, भक्तिभावसे स्पर्श करता हूं, पवित्र भावोंसे धारण करना चाहता हूं। इस निर्ग्रन्थपद सिवाय और दूसरा कोई भी उत्तम नहीं है। प्रथम कोई नही था और न भविष्यमें कोई इसके समान होगा। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र और सम्यक् आगमसे यह निर्ग्रन्थपद सर्वोत्कृष्ट है, इसके धारण करनेसे ही जीव मोक्षमार्गमें प्राप्त होंगे। सिद्धपदको प्राप्त होंगे। समस्त कर्म रहित सर्वथा मुक्त होंगे अर्थात् फिर कभी संसारके बंधनमें नहीं प्राप्त होंगे। इसी निर्ग्रन्थपदसे निर्वाणपदको प्राप्त होंगे, सर्व दुःखोंका नाश करेंगे। समस्त जीवादि तत्वोंके ज्ञाता होंगे। इसलिये मैं इस महान् परमपूज्य निर्ग्रन्थपदको धारण करता हूं और उसकी प्राप्तिके लिये संयमका आराधन करता हूं। विषय कषायोंसे उपशांत होता हूं, विरक्त होता हूं। परिग्रह क्रोध, मान, माया, लोभ, मात्सर्य, द्वेप, राग, काम, भय, प्रपंच और समस्त व्यामोहको छोड़ता हूं। हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील और परिग्रहका त्याग करता हूं। मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र से सर्वदा विरक्त हो गया हूं। अब मैं सदाके लिये इनका परित्याग करता हूं और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका श्रद्धान करता हूं। जो जिनेन्द्र भगवानने कहा है वह सत्य है;

प्रमाणित है; निश्चय है; अबाधित है। उसका मैं विश्वास करता हूं-श्रद्धान करता हूं इस विषयमें मुझसे जो कुछ अतीचार अनाचार हुए हों तो वे सब मिथ्या हों।

इच्छामि भंते वीरभत्ति काउस्सग्गं करेमि जो मए देवसिउं (राईउ चउमासिउ सांवच्छरिउ) अइचारो अणाचारो आभोगो अणाभोगो कईउ वाईउ माणसिउ दुच्चरिउ दुच्चारिउ दुब्भासिउ दुप्परिणामिउ दुस्समिणिउ णाण दंसणे चरित्ते सुत्ते समाइए एयारस एह पडिमाणं विराहणाए अट्ठविरस कम्मस्स णिग्घादणाए अणहा उस्सासिदेण वा णिस्सासिदेण वा उम्मिसिदेण वा णिमिसिदेण वा खासिदेण वा छिंकिदेण वा जंभाईदेण वा सुहुमेहिं अंगचलाचलेहिं दिट्ठिचलाचलेहिं एदेहिं सव्वेहिं समाहिं पत्तेहिं आयारेहिं जाव अरहंताणं भयवंताणं पज्जावासं करेमि तावकायं पावकम्म दुच्चरियं वोस्सरामि। दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त राय भत्तीय। बमारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदो यः।

एयासु यथा कहिद पडिमासु देवसिओ पमादाइकया इच्चार सोहणट्ठ छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं।

अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खियं

---

१ देवसिउ ३६ राउ १८ और चउमासिउ सांवच्छरिओ १०८ बार णमोकार मंत्र पढकर जाप्य दे।

सम्मत पुव्वगं दिढव्वद समागेहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु। देवसिय पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्तं पुव्वापरियकम्मेण णिट्ठितकरण वीरभत्तिकायोस्सग्गं करेमि।

"णमो अरहंताणं" यहांसे प्रारंभकर "यावंति जिन-चैत्यानि" इस श्लोकपर्यन्त पढकर पुनः नववार णमोकार मंत्रकी जाप्य देना चाहिये।

हे भगवान्! मैं वीरप्रभुकी भक्ति करनेका इच्छुक हूं और इसके लिये मैं इस विनाशीक शरीरसे ममत्वभाव छोड़ता हूं। दिवसमें (रात्रिमें इत्यादि) आवश्यक क्रियाओंके करते हुये मैंने आलस किया हो, व्रतादिकोंको भंग किया हो, उनमें अतीचार लगाये हों, शिथिलता धारण की हो, मनमें ग्लानि उत्पन्न की हो, प्रकटरूप दंभवृत्तिसे व्रत पालन किये हों, लज्जाके लिये एकदम अपनेको छुपाकर आचरण किये हों, मन, वचन और शरीरकी दुष्टतासे व्रतोंका पालन किया हो, वीभत्स उच्चारण कर कार्य किया हो, राग द्वेष अज्ञान और प्रमादसे विनय रहित उद्दण्डतासे व्रतोंका पालन किया हो, अपशब्द कहकर महत्ता वतलाई हो, कुत्सित परिणामों (बुरे भावों) से कार्य किया हो, बुरे स्वप्नमें दोष उत्पादन किया हो, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र और जिनागमकी

---

१ जैसा प्रतिक्रमण किया हो वैसी ही णमोकार मंत्रकी जाप देनी चाहिए अर्थात् दिवस संबंधी प्रतिक्रमणकी ३६ वार णमोकारकी जाप देना उसी प्रकार उक्त लिखित नियमसे रात्रिकी १८ वार णमोकारकी जाप देना आदि।

विराधना की हो, प्रतिमाओंकी विराधना की हो, इत्यादि अनेक दोष मुझसे बने हों, वे सब मिथ्या हों।

आठ कर्मोंको नाश करनेवाली क्रियाओंके प्रयत्न करनेमें (सामायिक-प्रतिक्रमण-ध्यान-तप-पूजा और स्वाध्याय ये सब कर्मों के नाश करनेके कारण हैं) श्वासोच्छ्वाससे, नेत्रोंकी टंकारसे, खांसनेसे, छींकनेसे, जंभाई लेनेसे, सूक्ष्म अंगोंके हिलानेसे, आंगोपांगके फेंकनेसे; दृष्टिदोषसे इत्यादि समस्त क्रियाओंसे सूत्रपाठ आदि क्रियाओंका विरमरण किया हो, अविनय की हो; प्रमाद और अज्ञानसे अन्यथा प्ररूपणा की हो तो मैं इस प्रतिक्रमणके समय वीर भगवान्‌की भक्तिरूप कायोत्सर्ग धारण करता हूं और तब तक पापकर्मोंको सर्वथा छोड़कर शरीरसे भी ममत्व त्याग करता हूं।

वीर-प्रभुका स्तवन।

यः सर्वाणि चराचराणि विविधद्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूतभाविभवतः सर्वान् सदा सर्वथा।
जानीते युगपत्प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः॥ १॥

अर्थ-जो समस्त चराचर पदार्थोंको तथा समस्त द्रव्य और उनकी कालत्रयवर्ती समस्त पर्यायोंको एक साथ प्रतिक्षण सदैव जानता है उसको सर्वज्ञ कहते हैं। वीर भगवान सर्वज्ञ हैं वीतराग हैं और महान् पूज्य जिनेश्वर हैं इसलिये वीर प्रभुको नमस्कार है।

वीरः सर्वसुरासुरेन्द्रमहितो वीरं बुधाः संश्रिताः
वीरेणाभिहितः स्वकर्मनिचयो वीराय भक्त्या नमः ॥
वीरात्तीर्थमिदं प्रवृत्तमतुलं वीरस्य घोरं तपो
वीरे श्रीधृतिकीर्तिकांतिनिचयो हे वीर ! भद्र त्वयि ॥१॥

अर्थ–हे वीर प्रभो ! आपकी समस्त इन्द्र पूजा करते हैं। विज्ञ गणधरादिक आपकी सेवा करते हैं और आपने समस्त कर्मोंको नष्ट कर दिया है इसलिये हे वीर ! आपको नमस्कार है। धर्मतीर्थ आपसे इस कालिकालमें चल रहा है, आप घोर तपको धारण करनेवाले परमयोगी हो। आपमें श्री, कांति, कीर्ति आदि सर्व गुणोंका वास है अतएव आप कल्याणभागी हों।

ये वीरपादौ प्रणमंति नित्यं, ध्याने स्थिताः संयमयोगयुक्ताः।
ते वीतशोका हि भवंति लोके, संसारदुर्गं विषमं तरंति ॥२॥

अर्थ–जो मनुष्य संयमको धारण कर और ध्यानमें लीन होकर वीरप्रभुको नमस्कार करता है वह समस्त शोकको दूरकर संसार समुद्रसे पार हो जाता है।

वीर प्रभुका चरित्र।

चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च स्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि ×पंचभेदं *पंचमचारित्रलाभाय ॥ १ ॥

×, सामायिक १ छेदोपस्थापना २ परिहारविशुद्धि, ३ सूक्ष्मसांपराय ४ और यथाख्यात ५।

* साक्षात्मोक्षका कारण यथाख्यात चारित्र है।

अर्थ-सदाचार जिनेन्द्र भगवानने स्वयं पालन किया है और समस्त जीवोंके उपकारके लिये सबको बतलाया है। उत्तम चारित्रकी प्राप्तिके लिये नमस्कार करता हूं।

व्रतसमुदयमूलः संयमास्कन्धबंधो, यमनियमपयोभिर्वर्द्धितः शीलशाखः। समितिकलिकभारो गुप्तिगुप्तप्रवालो, गुणकुसुमसुगंधिः सत्तपश्चित्रपत्रः॥ शिवसुखफलदायी यो दयाछाययोद्यः, शुभजनपथिकानां खेदनोदे समर्थः। दुरिततरविजनाप प्रापयन्नंतभावं, स भवविभवहान्यैनोऽस्तु चारित्रवृक्षः॥ २॥

अर्थ-व्रत, संयम, नियम, यम, शील, समिति, गुप्ति, तप, महाव्रत और दश धर्म चारित्रका रूप है। चारित्र मोक्षको देनेवाला दयाका बीज है. समस्त पाप और संसारका नाश करनेवाला है।

धर्म महिमा।

धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सयामणो॥१॥

अर्थ-धर्म समस्त मंगलोंमेंसे प्रधान मंगल है, अहिंसा, संयम और तप ये धर्मके रूप हैं। जो मनुष्य धर्मको पवित्र हृदयसे धारण करता है उसको देवता भी नमस्कार करते हैं।

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः ॥
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया
धर्मे चित्तमहं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ॥२॥

अर्थ—धर्मका मूल दया है, धर्मको विद्वान् गणधरादिक मुनीश्वर धारण करते हैं, धर्मसे सर्व सुखोंकी प्राप्ति और कल्याण होता है। धर्म सेवन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। धर्म ही जगतका बंधु है इसलिये धर्म सेवन करनेमें अपना चित्त लगाता हूं। हे धर्म ! मेरी रक्षा कर ! तेरे लिये नमस्कार है।

इच्छामि भंते पडिक्कमणा इचारमालोचेउ तत्थ देसासिआ, असणासिआ अथाणासिआ कालासिआ मुद्दासिआ काउस्सग्गासिआ पणमासिआ पडिक्कमणाए तत्थसु आवासयसु परिहीणदा जो मए अच्चासणा मणसा वचिया काएण कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कड। दंसण वय सामाइय पोसह सच्चित्तराय भत्तेय। बंभारंभपरिग्गह अणुमणमुद्दिह्ठ देसविरदेदे। एयासु यथा कहिद पडिमासु पमादाकया इच्चार सहिणह्ठ छेदोवट्ठवेण अरहंत सिद्ध आयरीय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खियं सम्मतपुव्वगं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु २ अथ देवसियडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहिणिमित्तं पुव्वापरिय कम्मेण चउवीसतित्थयरभक्ति काउस्सग्गं करेमि ॥

अर्थ- हे भगवन् ! अंतमें मैं अब प्रतिक्रमणमें लगे हुए दोषोंकी आलोचना करता हूं। द्रव्य क्षेत्र काल और भावोंकी अनुकूल योग्यता नहीं मिलनेसे, देश, आसन, स्थान, काल, मुद्रा कायोत्सर्ग, श्वासोच्छ्वास, नमस्कारादि विधि, और स्तुति आदि क्रियामें शोधनाके लिये, छह आवश्यक कर्मोंके करनेमें कुछ भी हीनता प्राप्त हुई हो, अथवा प्रमाद और अज्ञानसे जिन दोषोंकी (अथवा मन, वचन, काय और कृत कारित अनुमोदना द्वारा) प्राप्ति हुई हो तो वे सब मिथ्या हों।

इस प्रकार दोषोंकी शांतिके लिये चोवीस तीर्थंकरभक्ति व कायोत्सर्ग धारण करे। णमोकार मंत्र ९ वार पढकर जाप देवे।

"णमो अरहंताणं" से प्रारंभकर "यावंति जिन चैत्यानि" इस श्लोक पर्यन्त पाठ पढ़ना चाहिये और कायोत्सर्ग धारण करना चाहिये।

चउवीसं तित्थयरे उसहाई वीर पच्छिमे वंदे।
सव्वेसिं गुणगणहरसिद्धे सिरसा णमस्सामि॥ १ ॥

अर्थ-प्रथम ऋषभदेवको आदि लेकर वीर प्रभु पर्यन्त चौवीस तीर्थङ्कर, गणधर और सिद्धपरमेष्ठीको नमस्कार करता हूं।

ये लोकेऽष्टसहस्रलक्षणधरा ज्ञेयार्णवांतर्गताः।
ये संपन्नभवजालहेतुमथनाश्चंद्रार्कतेजोधिकाः।
ये साध्विन्द्रसुराप्सरोगणशतैर्गीतप्रणुत्यर्चितास्
तान् देवान् ऋषभादिवीरचरमान् भक्त्या नमस्याम्यहं॥

अर्थ-समस्त ज्ञेय पदार्थोंके ज्ञाता, एक हजार आठ शुभ

लक्षणोंसे विराजमान, संसारके बंधनको नाश करनेवाले, करोड़ों सूर्य और चंद्रमासे भी अधिक तेजस्वी, मुनीश्वर नरेन्द्र और देवेन्द्रसे पूज्य ऐसे ऋषभादि चौवीस तीर्थंकरोंको नमस्कार करता हूं।

नाभेयं देवपूज्य जिनवरमजितं सर्वलोकप्रदीपं।
सर्वज्ञ सभवाख्यं मुनिगणवृषभं नंदनं देवदेव॥
कर्मारिघ्न सुबुद्धि वरकमलनिभं पद्मपुष्पाभिगंधं।
क्षांतं दांत सुपार्श्वं सकलशशिनिभं चंद्रनामानमीडं॥
विख्यातं पुष्पदंतं भवभयमथनं शीतलं लोकनाथं।
श्रेयासं शीलकोशं प्रवरनरगुरु वासुपूज्यं सुपूज्यं।
मुक्त दान्तेन्द्रियांश्च विमलमृषिपतिं सिंहसन्यं मुनीन्द्रं।
धर्मं सद्धर्मकेतुं शमदमनिलयं स्तौमि शांतिं शरण्य॥
कुंथुं सिद्धालयस्थं श्रमणपतिमरं त्यक्तभोगेषु चक्रं।
मल्लिं विख्यातगोत्रं खचरगुणनुतं सुव्रतं सौख्यराशिं॥
देवेन्द्राच्यं नमीशं हरिकुलतिलक नेमिचन्द्रं भवन्तं।
पार्श्वं नागेन्द्रवंद्यं शरणमहमितो वर्द्धमानं च भक्त्या*

* १ इन तीनों श्लोकोंका अर्थ बहुत ही सरल है। ऋषभ १ अजित २ संभव ३ अभिनन्दन ४ सुमति ५ पद्मप्रभ ६ सुपार्श्व ७ चंद्रप्रभ ८ पुष्पदन्त ९ शीतलनाथ १० श्रेयांसनाथ ११ वासुपूज्य १२ विमलनाथ १३ अनन्तनाथ १४ धर्मनाथ १५ शांतिनाथ १६ कुंथनाथ १७ अरनाथ १८ मल्लिनाथ १९ मुनिसुव्रत २० नमिनाथ २१ नेमिनाथ २२ पार्श्वनाथ २३ महावीर २४ इस प्रकार चौवीस तीर्थंकर हैं।

इच्छामि भंते चउवीस तित्थयर भत्ति काउस्सग्गो कउतस्सालोचेउ पच महाकल्लाणसपण्णाण अट्ठ महापाडिहेर सहियाणं चउतीस अतिशय विशेषसजुत्ताणं बत्तीस देवेन्द मणि मउड मत्थय महियाणं वलदेव वासुदेव चक्कहर रिसि मुणि जय अणागारोवगूढाण थुइसय सहस्स णिलयाण उसहाइ वीर पच्छिम मंगल महापुरिसाणं भत्तिए णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमंसामि दुक्खक्खउ कम्मक्खउ बोहिलाउ सुगइगमणं समाहिमरण जिणगुणसपत्ति होउ मज्झ। दसण वय सामाइय पोसह सचित्तरायभत्तीय। बंभारंभ परिग्गह अणुमणमुद्दिठ देसविरदेदे। एयासु यथा कहिद पडिमासु पमादाकया। इचार सोहणाट्ठं छेदोवट्ठावणं अरहत सिद्ध आयरीय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खिय सम्मत्त पुव्वगं दिढव्वद समारोहियं मे भवदु मे भवदु मे भवदु। अथ देवसिय पडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहिणिमित्तं पुव्वायरीय कमेण आलोयण सिद्धभत्ति पडिक्कमणभत्ति णिट्ठिदकरण वीरभत्ति चउवीस तित्थयरभत्ति कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोषपरिहारार्थं सकलदोषनिराकरणार्थं सर्वमलातिचारविशुद्धयर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थं समाधिभक्तिकायोत्सर्गं करोमि॥

(णमोकार मंत्र ९ वार २७ श्वासोच्छ्वासमें जाप्य)

अर्थ—हे भगवन्! मैं समस्त दोषोंको दूर करनेके लिये

चौवीस तीर्थंकरोंकी भक्तिरूप कायोत्सर्ग धारण करता हुआ अपने कृत कर्मोंकी आलोचना करता हूं।

महान् पंच कल्याणकोंसे सुशोभित, अष्ट महा प्रातिहार्य¹ सहित, चौतीस अतिशय² सहित, वत्तीस प्रकारके देवेन्द्रोंके मस्तकमें लगी हुई मणियोंसे पूज्य, वलभद्र-वासुदेव-चक्रवर्ती-रुद्र-ऋषि-मुनीश्वर-यती-अनगार आदि महान् पुरुषोंके शिरोवंद्य, देवेंद्रोंकर सतत वंदनीय ऋषभदेवसे प्रारंभकर वीर भगवान पर्यंत चौवीस तीर्थङ्कर महामंगलके करनेवाले हैं, पुण्य पुरुष हैं, उनकी मैं त्रिकाल वंदना करता हूं, स्तवन करता हूं, पूजा करता हूं, नमस्कार करता हूं। चौवीस भगवानकी भक्तिसे दुःखोंका नाश हो, कर्मोंका नाश हो, रत्नत्रयकी प्राप्ति हो, शुभ गति हो, समाधिमरण हो और श्री जिनेन्द्र देवके गुणोंकी प्राप्ति हो। दर्शनादि प्रतिमामें सर्व दोषोंकी विशुद्धिके लिये पूर्व आचार्योंकी परिपाटीके अनुकूल अपने समस्त कृत कर्मोंकी आलोचना पूर्वक श्री सिद्ध प्रतिक्रमणभक्ति-वीरभक्ति और चौवीस तीर्थङ्कर भक्ति करनेपर विशेष दोषोंकी शुद्धिके लिये समाधिभक्ति कायोत्सर्ग धारण करता हूं। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उ-

---

१-अशोक वृक्ष, पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, भामंडल, छत्र त्रय, सिंहासन और दुन्दुभि वाजोंका वजना ये आठ प्रातिहार्य हैं।
२ दश जन्म, दश केवलज्ञान और चौदह देवकृत इस प्रकार चौतीस अतिशय अरहंत भगवानके होते हैं।

पाध्याय और सर्व साधुकी साक्षी पूर्वक सम्यग्दर्शन सहित उत्तमोत्तम व्रतोंका समारोह मेरे हृदयमंदिरमें हो।

(६ वार णमोकार मंत्र २७ श्वासमें)

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः सगतिः सर्वदार्यैः।
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनम्॥
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे।
सम्पद्यतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः॥ १॥

अर्थ—जैनागम अथवा जिन सिद्धांतका अभ्यास, श्री जिनेन्द्रदेव भगवान्‌की भक्तिपूर्वक वंदना, सदाचारधारी जैन यति ब्रह्मचारी-ऐलक्क और विद्वान् महात्माओंका संग, श्री जिनेन्द्र देव प्रभृति पुण्य पुरुषोंकी कथाका श्रवण, दूसरोंकी निंदाका त्याग, दूसरोंके तिरस्कारमें मौन, समस्त जीव मात्रमें प्रेम, हित मित वचन और आत्मभावना इतनी वस्तुओंका समागम जब तक मोक्षकी प्राप्ति न हो तब तक नित्य भव भवमें रहो

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः॥

अर्थ— हे जिनेन्द्रदेव! आपके पवित्र चरणकमल जब तक मुझे मोक्षकी प्राप्ति न हो तब तक मेरे हृदय मंदिरमें विराजमान रहो और मेरा हृदय आपके चरणकमलोंमें लीन रहे।

अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुक्खक्खयं दिंतु॥

अर्थ-हे जिनशासन (जिनागम) देव ! मैंने अक्षर मात्रा रहित जो कुछ अशुद्ध उच्चारण किया हो, सो क्षमा करो और मेरे दुःखोंका नाश करो।

दुक्खक्खउ कम्मक्खउ बोहिलाहो सुगइगमणं।
सम्मं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं ॥

अर्थ-हे भगवन् ! मेरे दुःखोंका नाश हो, कर्मोंका नाश हो, रत्नत्रयकी प्राप्ति हो, सुगतिगमन हो, सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो, समाधिमरण हो और श्रीजिनराजके गुणोंकी प्राप्ति हो ऐसी मेरी भावना है।

इच्छामि भंते इरियावहियस्स आलोचउ पुव्वुत्तर दक्षिण पश्चिम चउदिसु विदिसासु विहरमाणेण जुगुंतरदिट्ठिणा दट्ठवा उत्रउवचरियाए पमाददोसेण पाणभूद जीवसत्ताण उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमणिदो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ (९ वार णमोकार मंत्रकी जाप और आवर्त्त चारों दिशामें एवं प्रणुत्ति) ॥

परमप्पइ वड्ढमई परमेट्ठीण करोमि णवक्कारं।
सगपरसिद्धिणिमित्त कल्लाणालोयणा वोच्छे ॥१॥

भावार्थ-अनंत ज्ञानके धारक श्री अरहंत भगवानको नमस्कार करता हूं। और जीवोंके कल्याणार्थ मैं कल्याणलोचना कहता हूं।

रे जीवा णंतभवे ससारे संमग्त वहुवार।
पत्तो ण बोहिलाहो मिच्छत्तविजभयपडीहिं ॥२॥

भावार्थ—रे जीव ! मिथ्यात्वकर्मकी तीव्र प्रकृतियोंके उदय से इस अनंत जन्म मरणरूपी संसारमे तूने अनंतवार परिभ्रमण किया। परंतु अब तक तुझे रत्नत्रयकी प्राप्ति कभी नही हुई ॥२॥

संसार भमणगमणं कुणत्त आराहिओ ण जिणधम्मो।
तेण विणा वर दुक्खं पत्तोसि अणंत वा ाइं ॥ ३ ॥

भावार्थ-इस संसारमें परिभ्रमण करते हुए तूने जिन धर्म-का कभी नहीं पालन किया और उस जैनधर्मके आराधनाके विना इस संसारमें तुझको अनंतवार महान दुःख प्राप्त हुए हैं ॥ ३ ॥

संसारे णिवसंत्ता अणंत मरणाइ पाविओसि तुम।
केवलिण विणा तेसिं संखा पज्जन्ति णो हवई ॥ ४ ॥

भावार्थ-इस संसारमें निवास करते हुए तू ने अनंतवार मरण किये परंतु उस एक जैनधर्मके विना उन मरणोंको संख्या पूरी नहीं हुई। अर्थात् जन्म मरण का अंत नहीं हुआ।

तिण्णिसया छत्तीसा छावट्ठिसहस्सवार मरणाई।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोसि णिगोयमज्झम्मि ॥ ५ ॥

भावार्थ-रे जीव ! तू ने निगोदमें अंतमुहूर्त कालमें छयासठ हजार तीन सौ छत्तीसवार मरण किया ४८ मिनटमें ६६३३६ बार जन्म मरणके दुखको प्राप्त हुआ ॥ ५ ॥

तियलिंदिए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेहि।
पचेदिय चउवीसं खुद्दभवंतो मुहुत्तस्स ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे जोव ! तू ने दो इन्द्रिय अवस्थामें उस अंत-मुंहूर्त कालके मध्य अस्सी ८० क्षुद्रभव धारण किये । ते इन्द्रिय अवस्थामे ६० साठ क्षुद्रभव धारण किये । चौ इन्द्रिय पर्यायमें ४० चालीस क्षुद्रभव धारण किये और पंचेन्द्रिय पर्याय के २४ क्षुद्रभव धारण किये। इस जीवने एक अंतर्मुहूर्त कालमें ६६३३६ जन्म मरण किये इसका स्पष्टो कारण यह है कि - एकेन्द्रियके ११ भेद हैं—एक ही जोव उन ११ भेदोंमें क्रम से एक श्वासोच्छ्वासके समय १८ वार जन्म मरणको प्राप्त होता है इसलिये एकेन्द्रियके प्रत्येक भेदमें ६०१२ जन्म मरणको प्राप्त होता है। सव मिलाकर ६६१३२ भेद होते हैं। और दो इन्द्रिय आदिके समुदित भेद २०४ को जोड़ देनेसे ६६३३६ भेद होते हैं।

अण्णोण्ण खज्जता जीवा पावंति दारुणं दुक्खं।
ण हु तेसिं वज्जत्ती कहपावइ धम्ममइ सुण्णो ॥ ७ ॥

भावार्थ—परस्पर एक दूसरेके साथ क्रोध करते हुये वे जीव अत्यंत घोर दुःखको प्राप्त होते हैं। उनकी कभी पर्याप्ति ही पूरी नहीं होती है। उनके धर्म बुद्धि नही है अतएव निरंतर वे दुखके हो पात्र हैं। अनंतानंत जन्म मरणके दुःखोंको सहन करते हैं ॥ ७ ॥

मायापिया कुडंबो सुजणजण कोवि णाई सत्थे।
एगागी भमई सदा णहि बीओ अत्थि संसारे ॥ ८ ॥

भावार्थ—इस भयानक संसारमें परिभ्रमण करते हुए जीवके साथ माता पिता कुटुंबके लोग तथा परिवारके लोगोंमेंसे एक भी अपने साथ नहीं जाता है। यह जीव सदैव अकेला ही परिभ्रमण करता है और अपने किये पाप कर्मोंके फलसे जन्म मरणके महान दारुण दुखोंको प्राप्त होता है। परन्तु इसका साथी कोई नहीं होता है।

आउक्खए विपत्तो ण समत्थो कोवि आउदाणे य।
देवेंदो ण णरेंदो मणिओसह मतजालाई ॥ ९ ॥

भावार्थ—जब आयुका अन्त आता है। आयु पूरी हो जाती है तब कोई भी उस आयुको नहीं बढ़ा सकता है। न इन्द्र बढ़ा सकता है, न चक्रवर्ती बढा सकता है और न मणि औषधो वा यंत्र तंत्र आदि। कोई भी किसी प्रकारसे आयुको नहीं बढा सकते हैं।

संपडि जिणवरधम्मो लद्धोसि तुमं विसुद्ध जोएण।
खमसु जीवा सव्वे पत्ते समये पयत्तेण ॥ १० ॥

भावार्थ—रे जीव! इस समय महान पुण्योदयसे मन वचन कायके योगोंकी विशुद्धिसे तुझे इस जैनधर्मकी प्राप्ति हुई है। इसलिये बडे प्रयत्नके साथ प्रत्येक समयमें तू समस्त जीवोंको क्षमाकर विशुद्ध भावसे दया पालन कर ॥ १० ॥

तिण्णिसया तेसट्ठि मिच्छात्ता दंसणस्स पडिवक्खा।
अण्णाणे सद्दहिया मिच्छाये दुक्कडं हुज्जा ॥ ११ ॥

भावार्थ—आत्माधर्मका प्रतिपक्षी मिथ्यात्त्व है। मिथ्यात्वके ३६३ तीन सौ तिरेसठ भेद हैं। यदि उनका मैंने अपने अज्ञानसे श्रद्धान किया हो तो वे सब मेरे पाप मिथ्या हो। संसार में सबसे भयंकर पाप एक मिथ्यात्व ही है। संसारके परिभ्रमणका मूल कारण भी एक मिथ्यात्व ही है। इसलिये आमहितेच्छु भव्य जीवोंको सबसे प्रथम मिथ्यात्वका परित्यागकर भाव विशुद्धसे दृढ श्रद्धान पूर्वक सम्यग्दर्शन धारण करना चाहिये और अज्ञानसे जो मिथ्यात्त्व भाव हुए हों उनसे वह कर्मों की निर्जरा होनेके लिये भावना करना चाहिये और भविष्यमें मिथ्यात्व भाव नहीं हो इस प्रकारकी भावना करनी चाहिये।

महुमज्जमंसजुआपमिदीवसणाइ सत्तमेयाइं।
णियमो ण कयं च तेसिं मिच्छाये दुक्कडं हुज्जा ॥१२॥

भावार्थ—मद्य-मधु मांसका सेवन और जुआको आदि लेकर जो सात व्यसन है उनके परित्यागका नियम कदाचित् मैंने न किया हो तो वह सब पाप मेरा मिथ्या हो। सप्त व्यसनोंका सेवन जन्म मरण रूप संसारको बढानेवाला है। सर्व प्रकारके पवित्राचरणोंसे सप्त व्यसनोंका परित्याग करना चाहिये।

अणुव्वय महव्वया जे जमणियमासीलसाहुगुरुदिण्णा।
जे जे विराहिदा खलु मिच्छा ये दुक्कड हुज्ज ॥१३॥

भावार्थ—साधु परमेष्ठी अथवा आचार्य परमेष्ठी आदि (गृहस्थाचार्य) पूज्य पुरुषोंने मेरे हितके लिये अणुव्रत महाव्रत और सप्तशील नियम अथवा यमरूपसे दिये हों और उनमेंसे जिन जिन व्रतोंकी विराधना हुई हो वह सब मेरा पाप मिथ्या हो

णिच्चिदरधादुसत्तय तरुदसवियलेंदिएसु छच्चेव ।
सुरणरयतिरिय चउरो चउदसमणुए सदसहस्सा ॥१४॥
एदे सव्वे जीवा चउरासी लक्खजोणिवसिभत्ता ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कड हुज्जा ॥ १५ ॥

भावार्थ—नित्य निगोदके जीवोंकी सात लाख योनि, इतर निगोदके जीवोंकी सात लाख योनि, पृथ्वी कायिक जीवोंकी सात लाख योनि, जल कायिक जीवोंकी सात लाख योनि। अग्निकायिक जीवोंकी सात लाख योनि, वायु कायिक जीवोंकी सात लाख योनि, दो इन्द्रिय जीवोंकी दो लाख, तीन इन्द्रिय जीवोंकी दो लाख, चोइन्द्रिय जीवोंकी दो लाख योनि देवोंकी चार लाख योनि नारकी जीवोंकी चार लाख योनि पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंकी चार लाख योनि और मनुष्योंकी दस लाख योनि इस प्रकार समस्त संसारी जीवोंकी योनि चौरासी लाख हैं। इन चौरासी लाख योनिमें उत्पन्न हुए जिन जिन जीवोंकी विराधना मेरेसे हुई हो वह सब मेरा पाप मिथ्या हो। --

पुढवीजलग्गिवाओ तेओवि वणप्फई य वियलतया ।
जे जे विरहिया खलु मिच्छा मे दुकड हुज्ज ॥ १६ ॥

भावार्थ—पृथ्वीकायिक जीव जलकायिक जीव अग्निकायिकजीव वायुकायिकजीव वनस्पतिकायिकजीव और विकलत्रय-(दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय) जीवोंकी जो जो विराधना मुझसे हुई हो वह सब मेरा पाप मिथ्या हो ॥ १६ ॥

मल सत्तरा जिणुत्ता वयविउये जा विराहणा विहा।
सामाइय खमइया खलु मिच्छा मे दुक्कड हुज्ज ॥१७॥

भावार्थ—श्री भगवान जिनेन्द्र देवने व्रतोंके अतीचार (मल) सत्तर बतलाये हैं। उनमें से जो जो अतीचार मुझसे लगे हों या मुझसे व्रतकी ही विराधना हो गई हो अथवा सामायिक और क्षमा भावोंमे विराधना हो गई हो तत्संबंधी जो पाप मुझसे हुआ है वह सब मेरा पाप मिथ्या हो ॥ १७ ॥

फलफुल्लछल्लिवल्लि अणगल ह्राणं च धोवणाईहिं।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कड हुज्ज ॥ १८ ॥

भावार्थ—फल पुष्प छाल लता आदिको कार्यमें लानेसे जिन जिन जीवोंकी विराधना हुई हो, विना छाने पानीसे स्नानादि करनेसे जीवोंकी विराधना हुई हो। विना छने जल से वस्त्रादि धोनेमें जिन जीवोंकी विराधना हुई हो। इत्यादि अनेक प्रकारसे जलके जीवोंकी विराधना हुई हो वह मेरा सब पाप मिथ्या हो ॥ १८ ॥

णो सील णेव खमा विणाओ तवोण संजमोवासा।
ण कया ण भाविकया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ १९ ॥

भावार्थ—हे भगवन् ! मैंने जो शील पालन नहीं किया हो, क्षमा भाव न धारण किये हों, देव शास्त्र गुरु और धर्मायतनों-की विनय नहीं की हो, संयम पालन नहीं किया हो और उपवास आदि तपश्चरण नहीं किये हों तथा उनके धारण करने-की भावना भी नहीं की हो तत्संबंधी वह सब मेरा पाप मिथ्या हो।

कंदफलमूलवीया सचित्तरयणीय भोयणाहारा।
अणाणे जे विकया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥ २० ॥

भावार्थ—हे भगवान् ! यदि मैंने अपने अज्ञानसे कंद मूल, फल, वीज आदि खाये हों अन्य सचित्त पदार्थोंका भक्षण किया हो इत्यादिक पापारंभ किया हो, जो जो पाप मैंने किया हो वह सब मेरा पाप मिथ्या हो ॥२०॥

णो पूया जिणचरणे ण पत्तदाणं ण चेइयागमण।
ण कया ण भाविय मये मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२१॥

भावार्थ— मैंने श्रीजिनेन्द्र भगवानके पवित्र चरणकमलों-की पूजा नहीं की पात्रमें दान नहीं दिया और न इर्यापथ पूर्वक गमनागमन ही किया तथा न इन पवित्र कार्योंके करनेकी भावना ही की इस प्रकार जो पाप मुझसे लगे हों वे सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥२१॥

वभारभपरिग्गह सावज्जा बहुपमाददोसेण।
जीवा विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२२॥

भावार्थ--हे भगवन् ! मैंने अपने प्रमादके दोषसे ब्रह्मचर्या-में दोष लगाये हों, बहुत आरंभ तथा बहुत परिग्रहके संचय करनेमें अत्यधिक पाप किया हो, जीवोंकी विराधना की हो और सावद्य कार्योंके करनेसे जिन जीवोंकी विराधना की हो वे सब मेरे पाप मिथ्या हों ॥ २२ ॥

सत्तस्सिउखित्तभवा तीदाणागय सुवट्ठमाणजिणा ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२३॥

भावार्थ—हे प्रभो ! एक सौ सत्तर (१७०) कर्मभूमियोंमे होनेवाले भूत भविष्यत् वर्तमान काल संबंधो श्री तीर्थंकर परम देवाधिदेवोंकी जो विराधना की हो उनका जो अनादर किया हो अथवा अश्रद्धाके भाव प्रकट किये हों तत्संबंधो मेरा समस्त पाप मिथ्या हो ॥ २३ ॥

अरुहा सिद्धा इरिया उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२४॥

भावार्थ—भगवान् श्री अरहंत परमेष्ठी, श्री सिद्ध परमेष्ठी, श्री आचार्य परमेष्ठी, श्री उपाध्याय परमेष्ठी तथा सर्वसाधु परमेष्ठी की जो जो विराधना मुझसे हुई हो जो अविनय हुआ हो पंच परमेष्ठीकी पवित्र आज्ञा भंग हुई हो अथवा अश्रद्धा की हो वह सब मेरा पाप मिथ्या हो । २४॥

जिणवयण धम्मचेइय जिणमडिया किट्टिमा अकिट्टिमया ।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२५॥

भावार्थ—हे भगवन्! मैंने जिनवचन, जिनधर्म, जिनचैत्य, जिनालय और कृत्रिम अकृत्रिम जिन प्रतिमाओंकी जो विराधना की हो, आज्ञा भंग की हो, अविनय और आसादना किया हो तो वह सब मेरा पाप मिथ्या हो ॥२५॥

दंसणणाणचरित्ते दोसा अट्ठट्ठ पंच भेयाइं।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२६॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनके आठ शंकादिक दोष हैं। सम्यग्ज्ञानके आठ दोष हैं और सम्यक्चारित्रके पांच दोष हैं। उन समस्त दोषोंमेंसे जो जो दोष मुझे लगे हों वह सब मेरा पाप मिथ्या हो ॥२६॥

मइसुइओही मणपज्जयं तहा केवलं च पंचमयं।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२७॥

भावार्थ—हे भगवान्! मैंने मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्यायज्ञान और केवलज्ञान इन पांच प्रकारके ज्ञानोंमेंसे जिस किसी ज्ञानकी विराधना की हो-आसादना की हो तत्संबंधी वह सब मेरा पाप मिथ्या हो ॥२७॥

आयारादी अंगा पुव्व पइण्णा जिणेहिं पण्णत्ता।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२८॥

भावार्थ—हे भगवान्! श्रुतज्ञान (समयदेवता) के ग्यारह अंग और चौदह पूर्व श्री जिनेन्द्र भगवान्ने वतलाये हैं। उनके स्वरूपमें जो जो विराधना मैंने की हो तत्संबंधी वह समस्त मेरा पाप मिथ्या हो ॥२८॥

पंचमहाव्वयजुत्ता अट्ठादस सहस्स सीलकयसोभा।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥२९॥

भावार्थ--हे भगवन् ! पांच प्रकारके महाव्रतोंसे भले प्रकार सुशोभित और अठारह हजार शीलव्रतसे विभूषित ऐसे श्रीजिनेन्द्र भगवान्‌को मैंने जो विराधना की हो, उनका अविनय किया हो, अश्रद्धाके भाव प्रगट किये हों तो तत्संबंधी वह मेरा सब पाप मिथ्या हो ॥२६॥

लोए पिया समाणा रिद्धिपव्वणा महागण वइया।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३०॥

भावार्थ—हे आत्मन् ! तूने इस संसारमें अनेक सिद्धियों के धारक सर्वोत्कृष्ट महिमाको प्राप्त और जगतके पिताके समान गणधर देवोंकी जो जो विराधना की हो तत्संबंधी वह सब मेरा पाप मिथ्या हो ॥३०॥

णिग्गंथ अज्जिया ओ सड्ढासड्ढीय च चउविहो संघो।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३१॥

भावार्थ--हे भगवन्! मैंने परम दिगंबर निग्रंथ मुनि आर्यिका श्रावक और श्राविका इस प्रकार चार प्रकारके संघकी विराधना की हो, अविनय प्रकट किया हो, मिथ्याभाव प्रकट किया हो तो तत्संबंधी वह मेरा सब पाप मिथ्या हो ॥३१॥

देवासुरामणुस्सा णेरइया तिरियजोणिगयजीवा।
जे जे विराहिया खलु मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३२॥

भावार्थ—हे भगवान् ! मैंने भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष और कल्पवासी इस प्रकारके देवोंकी विराधना की हो असत दूषण लगाये हों। मनुष्य तिर्यंच और नारकी जीवोंकी विराधना की हो तो तत्संबन्धी वह मेरा सब पाप मिथ्या हो ॥३२॥

कोहो माणो माया लोहो एदेय रायदोसाइ।
अण्णाणे जे वि कया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३३॥

भावार्थ—हे भगवन् ! मैंने अपने अज्ञानभावसे जो क्रोध मान, माया, लोभ, राग, द्वेष और कामादिक जो दुर्भाव किये हों अथवा अज्ञानसे क्रोधादिक निंद्य कार्य किये हों तो तत्संबंधी वह मेरा समस्त पाप मिथ्या हो ॥३३॥

परवत्थ परमहिला पमादजोएण अज्जियं पावं।
अण्णा वि अकरणीया मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज ॥३४॥

भावार्थ—परवस्त्र और परस्त्री आदिके संबंधसे प्रमादयोग पूर्वक जो पाप मैंने किये हों अथवा जो जो नहीं करने योग्य कार्य किये हों वे सब मेरा पाप मिथ्या हो ॥३४॥

इक्को सहावसिद्धो सोहं अप्पा वियप्प परिमुक्को।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक परमप्पा ॥३५॥

भावार्थ—जो आत्मा एक है। शरीरादिक नोकर्म, द्रव्यकर्म और भावकर्मसे रहित है। स्वभावसे स्वयं सिद्ध है और सर्व प्रकारके विकल्पोंसे रहित है। ऐसे एक आत्माकी ही मैं शरण जाता हूं। ऐसे परमात्माके सिवाय अन्य कोई भी मेरे लिये शरण नहीं है ॥३५॥

अरस अरूव अगंधो अव्वावाहो अणंत णाणमओ ।
अण्णो ण मज्झ मरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३६॥

भावार्थ—जो परमात्मा रस रहित है। रूप रहित है। गंध रहित है। पुद्गलीक जड़ पदार्थोंके गुणधर्मोंसे सर्वथा रहित है सब प्रकारकी बाधासे रहित है और अनंतज्ञान स्वरूप है। ऐसा एक परमात्मा ही मुझे शरण है। अन्य कोई भी शरण नहीं है ॥३६॥

णेयपमाणं णाणं समए इक्केण हुंति ससहाये ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३७॥

भावार्थ—परमात्माका यह अनन्तज्ञान यद्यपि अपने स्वभावमे ही स्थिर रहता है तथापि वह प्रत्येक समयमें समस्त ज्ञेय पदार्थोंको जानता रहता है अर्थात् परमात्माका ज्ञान आत्माके प्रदेशोंमें प्रतिष्ठित होनेपर भी समस्त ज्ञेय पदार्थोंमें व्यापक है—सबको प्रत्यक्ष करनेवाला है। ऐसा परमात्मा ही मुझे शरण है। अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है ॥३७॥

एयाणेय वियप्पपसाहणेसयसहावसुद्धगई ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥३८॥

भावार्थ—उस परमात्माको चाहे एक प्रकारसे सिद्ध किया जाय चाहे अनेक प्रकारसे सिद्ध किया जाय वह सदा अपने ही स्वभावमें शुद्ध बुद्ध स्वरूप स्थित रहता है। ऐसा परमात्मा ही मुझे एक शरणभूत है, अन्य कोई भी मुझे शरणभूत नहीं है ॥३८॥

देहपमाणो णिच्चो लोयपमाणो विधम्मदो होदि।
अण्णो ण मज्झ सरण सरण सो एक्क परमप्पा ॥३९॥

भावार्थ—यह परमात्मा नित्य है। शरीर प्रमाणके बराबर है और प्रदेशोंके द्वारा लोक प्रमाण है। केवल समुद्घातमें आत्मा समस्त लोकके प्रमाण असंख्यात प्रदेशी सर्वगत होता है। इसलिये यह आत्मा प्रदेशोंकी अपेक्षा भी लोक प्रमाण है। यह परमात्मा ही मुझे एक शरणभूत है अन्य कोई भी शरण नहीं है ॥३९॥

केवलदंसणणाणं समये इक्केण दुण्णि उवओगा।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४०॥

भावार्थ—उस परमात्माके केवलदर्शन और केवलज्ञान इस प्रकार दोनों ही उपयोग एक समयमें एक साथ होते हैं। और वे दोनों उपयोग अनंतकाल पर्यन्त एक साथ ही पदार्थोंके स्वरूपको व्यक्त करते रहते हैं। ऐसा परमात्मा ही मुझे शरणभूत है ॥४०॥

सगरूव सहजसिद्धो विहावगुणमुक्ककम्मवावारो।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४१॥

भावार्थ—यह परमात्मा अपने स्वाभाविक स्वरूपमें ही लीन रहता है। स्वाभाविक स्वभावसे ही सिद्ध है और राग द्वेषादिक वैभाविक गुणोंसे रहित होनेके कारण समस्त कर्मोंके व्यापारसे रहित है। ऐसे वे परमात्मा ही मुझे शरण हैं। उसके सिवाय अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है ॥४१॥

सुण्णो णेय असुण्णो णोकम्मो कम्मवज्जिओ णाणं ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४२॥

भावार्थ—वह परमात्मा रूप रस गंध स्पर्श रहित होनेके कारण शून्य है तथा ज्ञानमय आत्मस्वरूप होनेके कारण शून्यरूप भी नहीं है । उस परमात्माका ज्ञान नोकर्मोंसे भी रहित है ऐसा वह परमात्मा मुझे शरण है ज्ञानावरण आदि कर्मोंसे भी रहित है अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है ॥४२॥

णाणउ जो ण भिण्णो वियप्पभिण्णो सहावसुक्खमओ ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४३॥

भावार्थ—जो परमात्मा अपने केवल ज्ञानसे कभी भिन्न नहीं है परन्तु सब प्रकारके विकल्पोंसे सर्वथा सदा भिन्न ही है । वह परमात्मा अपने स्वाभाविक सुखमय है ऐसा परमात्मा ही मुझे शरण भूत है अन्य कोई भी शरण नहीं है ॥४३॥

अच्छिण्णो वच्छिण्णो पमेय रूवत्त गुरुलहू चेव ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४४॥

भावार्थ—जो कभी किसी प्रकार छिन्न भिन्न नहीं होता है जो सदैव अखंड स्वरूप है । तथा अवछिन्न है। अंतिम शरीरके प्रमाणके समान है अथवा असंख्यात प्रदेशमय है । जो ज्ञानके द्वारा समस्त पदार्थोंके समान है । समस्त पदार्थों का ज्ञाता है। जो अगुरुलघुगुणसे सुशोभित है । ऐसा परमात्मा ही मुझे शरणभूत है । अन्य कोई शरण नहीं है ॥४४॥

सुहअसुहभावविगओ सुद्धसहावेण तम्मय पत्तो।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरणं सो एक्क परमप्पा ॥४५॥

भावार्थ—जो परमात्मा शुभभाव और अशुभभाव दोनों से रहित है। जो केवल शुद्धस्वभावके द्वारा अपनी आत्मा ही में तल्लीन हैं। अथवा जो अपने केवल शुद्धस्वभावमें ही प्रतिष्ठित है। ऐसा परमात्मा ही मुझे शरणभूत है अन्य कोई भी मुझे शरण नहीं है ॥४५॥

णो इत्थी णो णउंसो णो पुंसो णेव पुण्ण पावमओ।
अण्णो ण मज्झ सरणं सरण सो एक्क परमप्पा ॥४६॥

भावार्थ—जो परमात्मा न तो स्त्री स्वरूप है। न नपुंसक स्वरूप है। न पुरुष स्वरूप है। न पुण्यस्वरूप है न पापरूप है। न क्रिया है न अक्रिय है। वह परमात्मा अपने स्वभावमें ही सुस्थित है। वही परमात्मा मुझे शरण है अन्य कोई भी शरण नहीं है ॥४६॥

ते कोण होदि सुयणो तं कस्स बंधवो ण सुयणो वा।
अप्पा हवेइ अप्पा एगागी जाणगो सुद्धो ॥४७॥

भावार्थ—हे आत्मन्! तेरा इस संसारमें कोई भी सगा संबंधी कुटुंबी नहीं है। तथा तू भी किसीका सगा संबंधी कुटुंबी नहीं है। यह आत्मा सदैव अपने आत्मस्वरूप ही है, सुस्थिर है अकेला है समस्त पदार्थोंका ज्ञाता है, सदैव शुद्ध अनंत सुखमय है ॥४७॥

जिणदेवो होउ सयामई सु जिणसासणे सया होउ।
सण्णासेण य मरणं भवे भवे मज्झ संपदओ ॥४८॥

भावार्थ—मैं श्री जिनेन्द्रदेवकी ही सदा सेवा करता रहूं। श्री जिनेन्द्र देवके सिवाय अन्य किसी देवको न मानूं। मेरी बुद्धि सदा श्रीजिनशासनके सेवन करनेमें तल्लीन रहे। जैनधर्मकी श्रद्धा-भक्ति और सेवामें मेरी बुद्धि रहे। जिनधर्म-को छोड़कर अन्य किसी भी धर्ममें मेरी बुद्धि न जाय। मेरा मरण सदा समाधिपूर्वक हो हो। समाधिमरणके सिवाय अन्य मरण नहीं हो। यह सम्पत्ति मुझे भव भवमें प्राप्त हो।

जिणो देवो जिणो देवो जिणो देवो जिणोजिणो।
दयाधम्मो दयाधम्मो दयाधम्मो दयासया ॥४९॥

भावार्थ—इस संसारमे सच्चे देव एक जिन ही हैं; देव एक जिन ही है। देव एक जिन ही हैं। भगवान् श्री जिनेन्द्र देव-श्री अरहंत देव ही देव हैं। अन्य कोई भी देव नहीं है। धर्म दयारूप ही है। धर्म दयामयी ही है। धर्म दया ही है। धर्म सदा दयामय ही होता है। दया धर्मके सिवाय अन्य कोई भी धर्म नहीं है और न हो सक्ता है।

महासाहू महासाहू महासाहू दिगंवरा।
एवं तच्च सदाहुज्ज जाव णो मुत्तिसंगमो ॥५०॥

भावार्थ—महासाधु नग्न दिगंवर महर्षि ही होते हैं। महा साधु दिगंवर जैन मुनीश्वर ही होते हैं। महासाधु दिगंवर ही

होते हैं अन्य कोई भी महासाधु नहीं है । हे प्रभो ! जबतक मुझे मोक्षकी प्राप्ति न हो तब तक मेरे हृदयमें यही अटल श्रद्धान और यही तत्त्व दृढतासे बना रहे अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति पर्यन्त सत्यदेव सत्यगुरु सत्यधर्मकी श्रद्धा अविचलभावसे निरन्तर बनी रहे

एवमेव गओ कालो अणतो दुक्खसगमो ।
जिणोवदिट्ठ सण्णासेण यत्तारोहणा कया ॥५१॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आज तक मेरा अनंतकाल संसारके दारुण दुःखको भोगते हुए ही व्यर्थ व्यतीत होगया। मैंने अब तक श्री श्रीजिनेन्द्र देव भगवानके द्वारा कहे हुये समाधिमरणके लिये कभी भी प्रयत्न नहीं किया। अब मेरा मरण हो तो समाधिमरण पूर्वक ही हो ऐसी मेरी दृढ़ भावना भव भवमें निरन्तर बनी रहे।

संपद एत्र संपत्ता दाहणा जिणदेसिया ।
किं किं ण जायदे मज्झ सिद्धिसंदोहसंपई ॥५२॥

भावार्थ—हे प्रभो ! महान् पुण्योदयसे इस समय मुझे श्री जिनेन्द्रदेव भगवानकी कही हुई आराधना प्राप्त हुई हैं। इनके प्राप्त हो जानेसे इस संसारमें ऐसी कौनसी सिद्धी और संपत्ति है जो मुझे प्राप्त नहीं हो। इन आराधनाओंके प्रभावसे समस्त प्रकारकी सिद्धियां स्वयमेव अवश्य ही प्राप्त हो जायगी इसमें किसी प्रकारका संदेह नहीं है।

अहो धम्मं अहो धम्मं अहो मे लब्धि णिम्मला ।
संजादा संपया सारा जेण सुक्खमणूपम ॥५३॥

भावार्थ—यह श्री जिनेन्द्रदेवका कहा हुआ दया धर्म बड़ा ही आश्चर्यकारक है । तथा यह सबसे उत्कृष्ट है सर्वोत्तम है और यह मुझे प्राप्त हुई अत्यन्त निर्मल काललब्धि भी अतिशय आश्चर्य उत्पन्न करनेवाली है । इस निर्मल काललब्धि और जिनधर्मके प्रसादसे मुझे आराधना रूप सर्वोत्तम संपत्ति प्राप्त हुई है । इस आराधनारूप महा संपत्तिसे ही उपमा रहित मोक्ष-सुख अवश्य ही प्राप्त होगा ।

एव आराहतो आलोयणा वंदण पडिक्कमणं ।
पाइव फलयं तेसिं णिद्दिट्ठ अजिय वम्भेण ॥५४॥

भावार्थ—इस प्रकार आलोचना वंदना और प्रतिक्रमणको आराधना करनेसे भगवान् श्री जिनेन्द्रदेवको कही हुई मोक्ष अवश्य प्राप्त होती है । यह आलोचनाका स्वरूप अति संक्षेपमें देशयति "अजित" ब्रह्मचारीने मनोज्ञ रूपसे कहा है ।

अथ मिच्छामि दुक्कडम्।

प्रणमु श्री अरिहंतने, भजुं सरस्वति भावे,
जीव अनंता में बहु हण्या, कहेनां पार न आवे।
ते मुज मिच्छामि दुक्कडम्, अरिहंतनी साख ॥ १ ॥
के मे जीव विराधीआ, चोर्याशी लाख।
सार संभाल नहिं करी, कीधा छे बहु घात ॥ते मुज० ॥२॥
इतर नित्य निगोदना, सात सातज लाख।
सात लाख पृथ्वी तणा, सात अपज काय ॥ ते मुज० ॥३॥
दश लाख वनस्पति, प्रत्यक्ष साधारण।
सात लाख तेज कायना, सात वायुज जाण ॥ ते मुज० ॥४॥
बे ती चौ इन्द्रि जीवना, बबे लाख विख्यात।
देव, पशु वली नर्कना, चार चार उद्यात ॥ ते मुज० ॥५॥
चौद लाख मनुष गतिए, लक्ष चोर्याशी गणीया।
कृत कारित अनुमोदना, मन वच कायथी हणीया ॥ ते मुज०
एणी पेरे परभवे में कर्या, कर्या पाप अनत।
त्रिविध त्रिविध करी हुं भम्यो, दुर्गति दातार ॥ते मुज०॥७॥
हिंसा करी में जीवनी, बोल्यो जुठा-पोल।
दोष अदत्ता दानसुं, मैथुन हणमाद ॥ ते मुज० ॥८॥
परिग्रह मेलव्यो कारमो, कीधो क्रोध विशेष।
मान माया लोभ में कर्या, वली राग ने द्वेष ॥ते मुज०॥९॥

चाडी करी में चोतरे, वेर झेर वधार्यां।
कुगुरु, देव कुधर्मने, करी प्रतीतने पालया॥ ते मुज०॥१०॥
क्रोध करी जीव दुखव्या, कीधां कुडां कलंक।
निंदा करी में पारकी, रात दिवस वसत॥ ते मुज०॥११॥
खाटकीना भवमें कर्यां, जीवना वध कीध।
वाघरीने भव चरकली, मारी कंई अगणीत॥ते मुज०॥१२॥
माछीने भवे माछलां, झाली जल थकी काढ्यां।
प्रपच करी भवे पारधी, मृग मारीन पाड्यां॥ते मुज०॥१३॥
काजी मुल्लांने भवे, पढी मंत्र कठोर।
जीव अनंता जे में कर्या, पाप लाग्यां अघोर॥ते मुज०॥१४॥
कोटवाल नो भव में कर्यो, कर्या आकरा दंड।
बंधीवान मरावीया, पाड्या कोरडा अंग॥ते मुज०॥१५॥
कुंभारनो भव में कर्यो, मार्या भट्ठीने तापे।
तेली भवे तल पीलीया, पेट भरीयुं में पापे॥ते मुज०॥१६॥
परमाधामीने भवे, दीधां नारकी दुःख।
छेदन भेदन वेदना, लेश दीधुं न सुख॥ते मुज०॥१७॥
खेडु भवे हल खेडीयां, फोड्यां पृथ्विनां पेट।
आदु सुरण घणां कर्यां, खधां खूब चपेट॥ते मुज०॥१८॥
मालीने भवे रोपीयां, नानाविधि वृक्ष।
मूल पात्र फल फूलना, पाप लाग्यां ए लक्ष॥ते मुज०॥१९॥
वणझारानो भव में कर्यो, भर्यो अधिक भार।
पोंठी पुठे कीडा पड्या, नहि दया लगार॥ते मुज०॥२०॥

पाने भवे छेतर्या, कीधा रंगना पास ।
अग्नि जल वीधा घणां, जीव पकड्या छे खास ।।ते मुज०।।२१।।
सुरपणे रण झुजतां, मार्या माणस वृन्द ।
मदिरा मांस मधु भख्यां, खाधां मूल ने कंद ।।ते मुज०।।२२।।
खाण खोदावी में अति घणी, तेना पाणी उलेच्यां ।
आरंभ कीधा अति घणा, नहीं पापज पेख्यां ।।ते मुज०।।२३।।
अघोर कर्म कर्यां वली, वनमां दव दीधो ।
जीव अनंताने भरथीने, नहिं कर्मथी बीधो; ते मुज० ।।२४।।
भाडभुंजानो भव में कर्यो, मार्या भट्ठीमां जीव, ।
जुवार चणा बहु सेकीया, पडता अति बुंद; ते मुज० ।।२५।।
बिल्ली भवे उंदर हण्या, गरोळीए अंतारी, ।
मनुष्य भवे मूढता थकी, में जु लीख मारी; ते मुज० ।।२६।।
सुवावड दूषण घणा, आणी गर्भ गलाव्या, ।
जीव अणी विंध्या घणा, भांग्या शीयलव्रत; ते मुज० ।।२७।।
लुहारनो भव में कर्यो, घडयां शस्त्र अनेक, ।
कोस कुहाडा ने पावडा, मार्या मुकी विवेक; ते मुज० ।।२८।।
सुतारनो भव में कार्यो, लीला वृक्ष वढाव्यां, ।
आवल बावल बोरडी, झाझां मूल कपाव्यां; ते मुज० ।।२९।।
हथीना भव में कर्या, जीव पुंछ पछाडया, ।
पंखी माला तोडीया, सुंढे कईकने झाडया; ते मुज० ।।३०।।
कडीआना भव में कार्या, कुवा वाव खोदाव्या, ।
टांका में बधावीआ जीव अनंत कपाव्या; ते मुज० ।।३१।।

धोबीना भव में कर्या, जलना जीव मारया, ।
धूलवते कंईक ढांकीया, दान देता वार्या; ते मुज० ॥३२॥
गुज्जरना भवमें कर्या, लीला भारा वढाव्या, ।
पाडा बल ने ऊंटना, नाक छेदी वीधाव्या; ते मुज० ॥३३।
वणिकना भव में कर्या, कुडां पापज कीधां, ।
ओछुं आपी अदकुं लीधु, तेना दोपज लीधा; ते मुज० ॥३४
विकथा चोरी करी वली, सेव्या पंच प्रमाद, ।
इष्ट वियोग पडावीया. रुदन विखवाद; ते मुज० । ३५॥
राधण पीसण, एवा आरंभ अनेक, ।
राधण बालक इंधणा, पाप लाग्या विशेष; ते मुज० ॥३६॥
साधुने श्रावक तणा, व्रत लाईने भांग्या, ।
मूल अने उत्तरतणां, मुझ दोपज लाग्या; ते मुज० ॥ ३७ ॥
वींछु सिंह ने चीतरा, गीध स्यालनो समडी,. ।
ए हिंसक तणे भवे, हिंसा कीधी में अदकी; ते मुज० ॥३८
एणी परेभवे, में कर्या, बांध्यो कर्म अनंत, ।
विविध त्रिविध करी ओचरुं, करुं जनम पवित्र; ते मु० ।३९
राग वेसाडी जे भणे, गाय ढाल सहित, ।
नरेन्द्रकीर्ति कहे तेहना, छुटे पास त्वरित; ते मुज० ॥४०॥

इति मिच्छामि दुक्कडं सम्पूर्णं ।

